# समरथ

उन का जो फ़र्ज़ है
वो अहल-ए-सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मोहब्बत है
जहाँ तक पहुँचे
—*जिगर मुरादाबादी*—

जुलाई-सितंबर, 2023 ◆ नई दिल्ली

# नाहिं तो जनम नसाई

अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस 1982 के बाद से हर वर्ष इस आशा, निश्चय और विश्वास के साथ मनाया जाता है कि युद्ध और हिंसा के अंत और पूरी दुनिया में पूर्ण शांति की स्थापना की कोशिशें जारी रहेंगी। संयुक्त राष्ट्र संघ हर वर्ष इसके लिए एक थीम का चयन करता है जिससे शांति स्थापना और हिंसा के अंत के लिए जन साधारण, समूहों और सरकारों को प्रेरणा मिलती है। सन 2001 से ये दिन हर साल 21 सितंबर को मनाया जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि दूसरे महायुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि विश्व की समस्याओं, आपसी झगड़ों, सीमा विवादों आदि का समाधान युद्ध के द्वारा नहीं बल्कि आपसी बातचीत और वार्ता के जरिए शांतिपूर्ण ढंग से खोजा जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र हर साल इस दिन शांति स्थापना और संघर्ष समाधान से सम्बन्धित अपनी वचनवद्धता को दोहराता है। यह दिन हमें यह भी याद दिलाता है कि विश्वभर में पूर्ण और स्थाई शांति केवल हिंसा के अंत से नहीं बल्कि समाज के हर वर्ग के साथ पूर्ण न्याय के द्वारा ही संभव है जो इसकी अनिवार्य शर्त है। इसका अर्थ यह है कि जनतंत्र के मूल सिद्धांतों अर्थात् रंग, नस्ल और जाति के आधार पर हर प्रकार के भेदभाव का अंत और सभी नागरिकों के समान अधिकारों को स्वीकार किए बिना विश्व में शांति संभव नहीं है। दुर्भाग्य से जनतंत्र के इन मूल सिद्धांतों को कुचलने का सिलसिला अभी तक समाप्त नहीं हुआ है और विश्व के बहुत से देशों में जहां निर्वाचित सरकारें कायम हैं, नागरिकों को मूल और समान अधिकार प्राप्त नहीं। नि:संदेह जनतांत्रिक व्यवस्था की कुछ ऐसी कमियों के फलस्वरूप जो अभी तक दूर नहीं की जा सकी हैं, निरंकुश शासक सत्ता पर कब्जा जमा लेते हैं। जिसके बाद जनतांत्रिक मूल्यों को दरकिनार करने और जनतांत्रिक संस्थाओं को दुर्बल बनाने का सिलसिला चल निकलता है और नागरिकों और मीडिया की स्वतंत्रता पर हमले शुरू हो जाते हैं जिसकी मिसाल हमें बहुत से देशों में देखने को मिलती है। जनतांत्रिक संस्थाओं के दुर्बल होने से युद्ध और हिंसा का खतरा बढ़ जाता है और असंख्य लोगों को अपार संकट और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आज यदि यूक्रेन, सीरिया, फिलीस्तीन, अरटेरिया, सूड़ान, अफगानिस्तान, म्यांमार और इस्राइल आदि कितने ही मुल्कों में असंख्य नागरिक अपना घर-बार छोड़कर दर-दर भटकने या अपने ही देशों में तरह-तरह के अत्याचार का निशाना बनने पर मजबूर हैं तो उसका कारण सिर्फ यह है कि हम साधारण नागरिकों के मूल और मानवीय अधिकारों का आदर करना अब तक नहीं सीख सके हैं।

अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस हमें शांति, अहिंसा और संघर्ष समाधान से सम्बन्धित हमारी वचनवद्धता याद दिलाता है। यह देखते हुए कि आज भी विश्व में विनाशकारी हथियारों की होड़ लगी हुई है। यहाँ तक कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को भी शस्त्र के तौर पर प्रयोग करने की कोशिशें हो रही हैं जो एक भयावह वातावरण को जन्म दे सकती है और विश्व शांति के लिए एक बड़ा खतरा बन सकती है। इन परिस्थितियों में पूर्ण और स्थाई शांति और न्यायप्रद विश्व व्यवस्था के सपने को साकार करने के लिए हमें न सिर्फ पहले से ज्यादा सचेत रहना बल्कि सबसे पहले इस सिद्धांत पर पूरी दृढ़ता के साथ अड़िग रहना होगा कि हिंसा चाहे उसका कोई भी रूप हो, किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकती और किसी भी सभ्य समाज में इसके लिए कोई जगह नहीं है।

# ऐ शरीफ़ इंसानो

**—साहिर लुधियानवी**

ख़ून अपना हो या पराया हो
नस्ल-ए-आदम का ख़ून है आख़िर
जंग मशरिक़[1] में हो कि मग़रिब[2] में
अम्न-ए-आलम[3] का ख़ून है आख़िर

बम घरों पर गिरें कि सरहद पर
रूह-ए-तामीर[4] ज़ख़्म खाती है
खेत अपने जलें कि औरों के
ज़ीस्त[5] फ़ाक़ों से तिलमिलाती है

टैंक आगे बढ़ें कि पीछे हटें
कोख धरती की बाँझ होती है
फ़तह का जश्न हो कि हार का सोग
ज़िंदगी मय्यतों[6] पे रोती है

जंग तो ख़ुद ही एक मसअला[7] है
जंग क्या मसअलों का हल देगी
आग और ख़ून आज बख़्शेगी
भूक और एहतयाज़[8] कल देगी

इसलिए ऐ शरीफ़ इंसानो
जंग टलती रहे तो बेहतर है
आप और हम सभी के आँगन में
शम्अ जलती रहे तो बेहतर है

बरतरी[9] के सुबूत[10] की ख़ातिर
ख़ूँ बहाना ही क्या ज़रूरी है
घर की तारीकियाँ[11] मिटाने को
घर जलाना ही क्या ज़रूरी है

जंग के और भी तो मैदाँ हैं
सिर्फ़ मैदान-ए-किश्त-ओ-ख़ूँ[12] ही नहीं
हासिल-ए-ज़िंदगी[13] ख़िरद[14] भी है
हासिल-ए-ज़िंदगी जुनूँ[15] ही नहीं

आओ इस तीरा-बख़्त[16] दुनिया में
फ़िक्र[17] की रौशनी को आम करें
अम्न को जिन से तक़वियत[18] पहुँचे
ऐसी जंगों का एहतमाम[19] करें

जंग वहशत[20] से बरबरिय्यत[21] से
अम्न तहज़ीब ओ इर्तक़ा[22] के लिए
जंग मर्ग-आफ़रीं-सियासत[23] से
अम्न इंसान की बक़ा[24] के लिए

जंग इफ़्लास[25] और ग़ुलामी से
अम्न बेहतर निज़ाम की ख़ातिर
जंग भटकी हुई क़यादत[26] से
अम्न बे-बस अवाम की ख़ातिर

जंग सरमाए[27] के तसल्लुत[28] से
अम्न जम्हूर[29] की ख़ुशी के लिए
जंग जंगों के फ़लसफ़े[30] के ख़िलाफ़
अम्न पुर-अम्न ज़िंदगी[31] के लिए

---

*1. पूर्व, 2. पश्चिम, 3. विश्व शांति, 4. निर्माण की आत्मा, 5. ज़िंदगी, 6. अर्थियों पर, 7. समस्या, 8. आवश्यकताएँ, 9. बढ़प्पन, 10. प्रमाण, 11. अँधेरे, 12. मारकाट का मैदान, 13. जीवन की उपलब्धि, 14. बुद्धि, 15. पागलनपन, उन्माद, 16. भाग्यहीन, 17. चिंतन-मनन, 18. शक्ति, बल, 19. प्रबंध, 20. असभ्यता, पागलपन, 21. पशुता, 22. सभ्यता और उन्नति, 23. मौत उत्पन्न करने वाली राजनीति, 24. भलाई, 25. गरीबी, 26. नेतृत्व, 27. पूंजी, धन, 28. आधिपत्य, 29. जनता, 30. विचारधारा, दर्शन, 31. शांतिमय जीवन।*

# अम्न के वास्ते मोहब्बत के वास्ते

**—साहिर लुधियानवी—**

आओ कि कोई ख़्वाब बुनें, कल के वास्ते
वरना यह रात, आज के संगीन दौर[1] की
डस लेगी जानो-दिल को कुछ ऐसे कि जानो-दिल
ता-उम्र[2] फिर न कोई हसीं, ख़्वाब बुन सकें

गो हमसे भागती रही यह तेज़-गाम[3] उम्र
ख़्वाबों के आसरे पे कटी है तमाम उम्र

जुल्फों के ख़्वाब, होंठों के ख़्वाब, और बदन के ख़्वाब
मेराजे-फ़न[4] के ख़्वाब, कमाले-सुख़न[5] के ख़्वाब

तहज़ीबे-जिन्दगी[6] के, फ़रोग़े-वतन[7] के ख़्वाब
ज़िन्दा[8] के ख़्वाब, कूचए-दारो-रसन[9] के ख़्वाब

ये ख़्वाब ही तो अपनी जवानी के पास थे
ये ख़्वाब ही तो अपने अमल की असास[10] थे
ये ख़्वाब मर गए हैं तो बेरंग है हयात
यूं है कि जैसे दस्ते-तहे-संग[11] है हयात

आओ कि कोई ख़्वाब बुनें कल के वास्ते
वरना यह रात आज के संगीन दौर की
डस लेगी जानो-दिल को कुछ ऐसे कि जानो-दिल
ता-उम्र फिर न कोई हंसी ख़्वाब बुन सकें।

*1. गर्दिश का युग, 2. जीवन भर, 3. तीव्र गति, 4. कला की निपुणता, 5. काव्य की परिपूर्णता, 6. जीवन की सभ्यता, 7. देश की उन्नति, 8. कारागार, 9. फांसी, 10. नींव, 11. पत्थर के नीचे दबा हाथ।*

# लोकतंत्र के नाम पर आइए, हम एक जुट हो जाएं!

"

***चार्ली चैपलिन की सबसे लोकप्रिय फिल्मों में शुमार है फिल्म 'द ग्रेट डिक्टेटर।' इस फिल्म का सबसे प्रसिद्ध दृश्य वह मार्मिक व कालजयी भाषण है जो फिल्म के अंत में है एक आह्वान के साथ। जो उस वक्त महायुद्ध की विभीषिका में शांति और मानवता का एक अद्भुत संदेश देते हुए तानाशाहों के ख़िलाफ़ शांति से एकजुट खड़े होने का आह्वान करता है और मानवता की भावना को सर्वोपरि रखने की सीख देता है।***

''मुझे खेद है, लेकिन मैं शासक नहीं बनना चाहता। ये मेरा काम नहीं है। मैं किसी पर राज करना या किसी को जीतना नहीं चाहता। मैं तो हर किसी की मदद करना चाहूंगा, अगर हो सके तो यहूदियों की, गैर यहूदियों की, काले लोगों की, गोरे लोगों की। हम सब एक दूसरे की मदद करना चाहते हैं। मानव होते ही ऐसे हैं। हम एक दूसरे की खुशी के साथ जीना चाहते हैं, एक दूसरे की तकलीफ़ों के साथ नहीं। हम एक दूसरे से नफ़रत और घृणा नहीं करना चाहते। इस संसार में सभी के लिए स्थान है और हमारी यह समृद्ध धरती सभी के लिए अन्न जल जुटा सकती है।

जीवन का रास्ता मुक्त और सुन्दर हो सकता है, लेकिन हम रास्ता भटक गये हैं। लालच ने आदमी की आत्मा को विषाक्त कर दिया है, दुनिया में नफ़रत की दीवारें खड़ी कर दी हैं, लालच ने हमें ज़हालत में, खून खराबे के फंदे में फंसा दिया है। हमने गति का विकास कर लिया लेकिन अपने आपको गति में ही बंद कर दिया है। हमने मशीनें बनायीं, मशीनों ने हमें बहुत कुछ दिया लेकिन हमारी मांगें और बढ़ती चली गयीं। हमारे ज्ञान ने हमें सनकी बना छोड़ा है; हमारी चतुराई ने हमें कठोर और बेरहम बना दिया है। हम बहुत ज्यादा सोचते हैं और बहुत कम महसूस करते हैं। हमें बहुत अधिक मशीनरी की तुलना में मानवीयता की ज्यादा ज़रूरत है। चतुराई की तुलना में हमें दयालुता और विनम्रता की ज़रूरत है। इन गुणों के बिना, जीवन हिंसक हो जायेगा और सब कुछ समाप्त हो जायेगा।

हवाई जहाज और रेडियो हमें आपस में एक दूसरे के निकट लाये हैं। इन्हीं चीज़ों की प्रकृति ही आज चिल्ला-चिल्ला कर कह रही है, इन्सान में अच्छाई हो, चिल्ला चिल्ला कर कह रही है, पूरी दुनिया में भाईचारा हो, हम सबमें एकता हो। यहां तक कि इस समय भी मेरी आवाज़ पूरी दुनिया में लाखों-करोड़ों लोगों तक पहुंच रही है, लाखों करोड़ों हताश पुरुष, स्त्रियां, और छोटे-छोटे बच्चे, उस तंत्र के शिकार लोग, जो आदमी को क्रूर और अत्याचारी बना देता है और निर्दोष इन्सानों को सींखचों के पीछे डाल देता है। जिन लोगों तक मेरी आवाज़ पहुंच रही है, मैं उनसे कहता हूं कि निराश न हों। जो मुसीबत हम पर आ पड़ी है, वह कुछ नहीं, लालच का गुज़र जाने वाला दौर है। इन्सान की नफ़रत हमेशा नहीं रहेगी, तानाशाह मौत के हवाले होंगे और जो ताकत उन्होंने जनता से हथियायी है, जनता के पास वापिस पहुंच जायेगी और जब तक इन्सान मरते रहेंगे, स्वतंत्रता कभी खत्म नहीं होगी।

सिपाहियों! अपने आपको इन वहशियों के हाथों में न पड़ने दो, ये आपसे घृणा करते हैं, आपको गुलाम बनाते हैं, जो आपकी ज़िंदगी के फैसले करते हैं, आपको बताते हैं कि आपको क्या करना चाहिए, क्या सोचना चाहिए और क्या महसूस करना चाहिए! जो आपसे मशक्कत करवाते हैं, आपको भूखा रखते हैं, आपके साथ मवेशियों का-सा बरताव करते हैं और आपको तोपों के चारे की तरह इस्तेमाल करते हैं, अपने आपको इन अप्राकृतिक मनुष्यों, मशीनी मानवों के हाथों गुलाम मत बनने दो, जिनके दिमाग मशीनी हैं और जिनके दिल मशीनी हैं! आप मशीनें नहीं हैं! आप इन्सान हैं! आपके दिल में मानवता के प्यार का सागर हिलोरें ले रहा है। घृणा मत करो! सिर्फ वही घृणा करते हैं जिन्हें प्यार नहीं मिलता, प्यार न पाने वाले और अप्राकृतिक!!

सिपाहियों! गुलामी के लिए मत लड़ो! आज़ादी के लिए लड़ो! सेंट ल्यूक के सत्रहवें अध्याय में यह लिखा है कि ईश्वर का साम्राज्य मनुष्य के भीतर होता है, सिर्फ़ एक आदमी के भीतर नहीं, न ही आदमियों के किसी समूह में ही अपितु सभी मनुष्यों में ईश्वर वास करता है! आप में! आप में, आप सब व्यक्तियों के पास ताकत है, मशीनें बनाने की ताकत। खुशियां पैदा करने की ताकत! आप, आप लोगों में इस जीवन को शानदार रोमांचक गतिविधि में बदलने की ताकत है। तो लोकतंत्र के नाम पर आइए, हम ताकत का इस्तेमाल करें, आइए, हम सब एक हो जायें। आइए, हम सब एक नयी दुनिया के लिए संघर्ष करें। एक ऐसी बेहतरीन दुनिया, जहां सभी व्यक्तियों को काम करने का मौका मिलेगा। इस नयी दुनिया में युवा वर्ग को भविष्य और वृद्धों को सुरक्षा मिलेगी।

इन्हीं चीज़ों का वायदा करके वहशियों ने ताकत हथिया ली है। लेकिन वे झूठ बोलते हैं! वे उस वायदे को पूरा नहीं करते। वे कभी करेंगे भी नहीं! तानाशाह अपने आपको आज़ाद कर लेते हैं लेकिन लोगों को गुलाम बना देते हैं। आइए, दुनिया को आज़ाद कराने के लिए लड़ें, राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ डालें, लालच को खत्म कर डालें, नफ़रत को दफ़न करें और असहनशक्ति को कुचल दें। आइये, हम तर्क की दुनिया के लिए संघर्ष करें, एक ऐसी दुनिया के लिए, जहां पर विज्ञान और प्रगति इन सबकों खुशियों की तरफ ले जायेगी, लोकतंत्र के नाम पर आइए, हम एक जुट हो जायें!

# फ्रांसीसी क्रांति :
## जिसने स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता और नागरिक अधिकार की नींव रखी

**स्वदेश कुमार**

"

***आज जब व्यापक रूप से मानवाधिकारों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन व धर्म-जाति के आधार पर भेदभाव, उत्पीड़न हो रहा है, ऐसे समय में फ्रांसीसी क्रांति की प्रासंगिकता और ज्यादा बढ़ जाती है। इस क्रांति का न केवल फ्रांस पर बल्कि शेष यूरोप और विश्व पर भी गहरा प्रभाव पड़ा था, जिसने शांति के लिए स्वतंत्रता, समानता और लोकतंत्र के लिए होने वाले अन्य आंदोलनों को प्रेरित किया था।***

पेरिस से थोड़ी दूर पर एक छोटा सा किला था, जहाँ राजनीतिक बंदी रखे जाते थे। वहाँ पर 13 जुलाई को यह अफवाह फैली कि सैनिकों को पेरिस भेजा जा रहा है, इससे उत्तेजित होकर लोगों ने हथियार इकट्ठा करने का निर्णय किया। नगर में जहाँ भी हथियार उपलब्ध हो सकते थे, वहाँ भीड़ ने लूट कर उन्हें हथिया लिया।

14 जुलाई को यह खबर फैली कि बास्तील में शस्त्रों का भंडार है और यह जानकर भीड़ उधर ही उमड़ पड़ी। उस समय बास्तील में न तो बहुत अधिक हथियार थे और न राजनीतिक कैदी। भीड़ को डराने के लिए जब रक्षकों ने गोली चलाई और लोग हताहत हुए, तो भीड़ बास्तील के किले पर टूट पड़ी तथा ईंट से ईंट बजाते हुए बास्तील के किले को नेस्तनाबूद कर उसका नामोनिशान मिटा दिया गया। किले के रक्षक मार दिए गए, कैदियों को छोड़ दिया गया।

इस घटना का महत्व इसी बात से समझा जा सकता है कि आज भी फ्रांस अपना राष्ट्रीय दिवस 14 जुलाई को ही मनाता है। वैसे तो यह कोई बड़ी बात नहीं थी, एक मामूली किले पर उग्र भीड़ ने कब्जा करके उसे नष्ट कर दिया था, यह घटना बदले हुए समय के आगमन की स्पष्ट ही पूर्व सूचना थी। यह मेहनतकश वर्ग के लोगों की जीत थी, यह क्रांति का उद्घोष था। बास्तील का पतन एक किले का ही पतन नहीं था, सिद्धांत और परम्परा का पतन था। यह घटना 1789 की है, इसे फ्रांस की क्रांति की शुरुआत माना जाता है।

एक ऐसी क्रांति जिसके घटित हुए 200 से अधिक वर्ष हो चुके हैं, उसका महत्व और उसकी प्रासंगिकता आज की दुनिया या अपने देश के लिए क्या है? इसका विश्लेषण जरूरी है। मानव जगत में इस क्रांति के पहले और बाद में भी क्रांतियाँ हुईं, लेकिन इस क्रांति की अनगिनत उपलब्धियों, इसकी शाश्वत गरिमा और इसका रोमांचकारी घटनाओं के समकक्ष उनमें से किसी को नहीं खड़ा किया जा सकता। आधुनिक इतिहास की यह पहली क्रांति है, जिसमें पूरी क्रांति के लिए इसके किसी एक प्रणेता को श्रेय नहीं दिया जा सकता। इस क्रांति की सबसे बड़ी विशेषता यह रही, कि इसके प्रत्येक दौर में नेतृत्व का एक नया वर्ग उभरकर सामने आ जाता रहा।

क्रांति पूर्व के इसके दार्शनिक प्रणेताओं—वाल्तेयर ,रूसो और मोंतेस्क्यू को छोड़ भी दिया जाए, तो आब्बे सिमेंस, मिरागो, लॉफायेत, ब्रिसो दांते, मॉरा और रोबेसपियैर जैसे नेतृत्व एक के बाद एक जनता के बीच आते गए और अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कर राजनीतिक पटल से ओझल होते चले गए। वास्तव में इस क्रांति का असली नायक और नेता जनता ही थी।

आधुनिक मानव समाज में समता, स्वतंत्रता, भाईचारा,

धर्मनिरपेक्ष राज्य, मानवाधिकार एवं नागरिक अधिकार के मूल्यों की नींव रखने वाली यह क्रांति यद्यपि हुई तो फ्रांस में लेकिन इसकी उपलब्धियों की गूँज किसी न किसी रूप में प्रत्येक आधुनिक समाज में सुनाई देने लगी थी। स्वयं भारत का स्वतंत्रता संग्राम भी इसके मूल्यों और आदर्शों से कम प्रभावित नहीं हुआ था। राजाराम मोहन राय से लेकर गांधी तक ने इस क्रांति के आदर्शों से अनेक शिक्षाएँ ग्रहण की थीं। जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'विश्व इतिहास की एक झलक' में इस क्रांति के बारे में लिखा है कि 'क्रांतिकाल के फ्रांस में नवयुवक होना बड़े गर्व की बात है।'

क्रांति की रोशनी में एक नया फ्रांस जाग्रत हुआ। सदियों पुरानी व्यवस्था का अंत हो चुका था। सामन्ती समाज की कब्र पर पूँजीवादी फूल खिल रहे थे। सामन्तों की ज़मीन पर पहले ही किसानों ने कब्जा करना शुरू कर दिया था। धीरे-धीरे सामन्तों की ज़मीन नगर के धनिकों और मध्यवर्गीय लोगों के हाथों में आने लगी। उस समय कार्टून प्रकाशित हुआ था, पहली तस्वीर में एक बूढ़ा किसान पीठ पर बोझ लादे जा रहा है, बोझ पर लिखा है—सामन्ती और धार्मिक कर। दूसरी तस्वीर में वही किसान सामन्त और पादरी पर सवारी करते हुए कह रहा है—मैं जानता था कि मेरे दिन भी आएँगे। सम्भवत: यह पूरी तरह से ही सही नहीं था कि इस नयी चेतना से फ्रांस का किसान शक्तिशाली हो गया, लेकिन यह ज़रूर सच था कि सामन्त और पादरी ध्वस्त हो गए।

फ्रांस की क्रांति का सबसे बड़ा सबक राजनीतिक न होकर वैचारिक है। अट्ठारवीं शताब्दी में यूरोप में वैचारिक स्तर पर नया दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था। कोपरनिकस और गैलीलियो के बाद विज्ञान की बढ़ती हुई प्रगति के साथ ज्ञानोदय (एन्लाइटेनमेंट) का युग आया, जिसमें लेखक सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन करने में अपनी लेखनी का उपयोग करने लगे। उनका नारा—तर्क, सहिष्णुता और मानवता (रीजन, टालरेंस एण्ड ह्यूमैनिटी) था। ये लोग क्रांति नहीं चाहते थे, किन्तु इनके प्रभाव और विचारों से परिवर्तन की प्रक्रिया को बल मिला। इसमें प्रमुख नाम वाल्तेयर, मोंतेस्क्यू, रूसो थे।

वाल्तेयर ने भ्रष्ट एकतंत्र की आलोचना की, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बल देते हुए उन्होंने कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम्हारी बात गलत है, फिर भी उसे कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं जान देने के लिए तैयार हूँ।' उन्हें अट्ठारवीं शताब्दी के पुनर्जागरण का प्रस्तोता कहा जाता है। उन्हें फ्रांस ही नहीं सारे यूरोप में विवेक, प्रबुद्धता और प्रगति के सिद्धांत के प्रचार-प्रसार का श्रेय प्राप्त है। उन्हें विश्वास हो चला था कि फ्रांसीसी धीरे-धीरे उसकी बातें ज़रूर मानेंगे और भविष्य बेहतर होगा।

उन्होंने एक मित्र को लिखा—फ्रांसीसी लोग समझते तो हैं, मगर देर से। युवा लोग बेहतर दिन देखेंगे (फ्रेंच पीपुल कम टु थिंग्स लेट, बट दे डू कम यंग पीपुल हैव टु सी फाइन थिंग्स)। उनकी मृत्यु के एक दशक बाद हुई क्रांति ने उनके विचारों को क्रियान्वित कर पुष्ट कर दिया।

मोंतेस्क्यू को राजनीति विज्ञान का पहला महत्वपूर्ण विचारक कहते हैं। सबसे पहले उन्होंने फारस के ख़त (पर्शियन लेटर्स) नामक पुस्तक में काल्पनिक यात्रियों के माध्यम से तत्कालीन फ्रांसीसी समाज की आलोचना की। वह इंग्लैंड से बहुत प्रभावित थे और राजतंत्र के समर्थक थे, लेकिन वह राजा की शक्ति को संतुलित या नियंत्रित करने के लिए अन्य संस्थाओं को शक्तिशाली बनाना चाहते थे।

उनकी दूसरी पुस्तक स्पिरिट ऑफ़ लॉज में वह राजा की निरंकुशता के स्थान पर एक वैधानिक राजतंत्र की बात करते हैं। परोक्ष रूप से उन्होंने फ्रांस के एकतंत्र और केन्द्रीकरण की आलोचना की तथा राजतंत्र को बेहतर बनाने के सुझाव रखे।

उन्होंने पहली बार परम्परागत व्यवस्था का एक विकल्प प्रस्तुत किया। उनकी बातें कितनी मूल्यवान थीं, इसका प्रमाण इस बात से मिलता है, कि अमेरिकी संविधान में इसे स्वीकार किया गया और क्रांतिकारी फ्रांस में भी उनके सिद्धांतों को संवैधानिक स्वरूप प्रदान किया गया। आज भी इस सिद्धांत की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है और विभिन्न देशों के संविधान में उसे कमोबेश स्वीकार किया गया है।

भारत के संविधान में भी न्यायपालिका और कार्यपालिका को पूरी तरह अलग-अलग रखने का विधान राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में स्वीकार किया गया।

तीसरा सबसे महत्वपूर्ण नाम रूसो का था। रूसो एक रोमांटिक व्यक्ति थे, उन्होंने अपने आचरण तथा लेखन में रूढ़ियों की अवहेलना करके स्वतंत्रता और समानता के विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने साहित्य, शिक्षा, समाज और राज्य के विषय में नये विचार प्रस्तुत करके लोगों को भावना और विवेक दोनों स्तरों पर प्रभावित किया। उन्होंने राज्य के दैवी सिद्धांत को अस्वीकार करके बताया कि राज्य का जन्म किसी समझौते से

होता है तथा उसने समझौता करने वालों अर्थात् जनता को शक्ति सम्पन्न बताया। बहुत विवेकपूर्ण और तर्कसंगत विश्लेषण न कर पाने के बावजूद उन्होंने तत्कालीन समाज को काफी हद तक प्रभावित किया।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक का यह वाक्य मानो क्रांति का उद्घोष बन गया—'मनुष्य आज़ाद पैदा होता है, लेकिन बाद में वह चारों ओर से जंजीरों से जकड़ दिया जाता है।'

उनकी आस्था का केन्द्र मानव था, इसलिए स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व (लिबर्टी, इक्वैलिटी एण्ड फ्रेटरनिटी) जैसे सिद्धांत उनकी लेखनी से प्रकट हो सके, यद्यपि उनके विचार काल्पनिक माने जाते हैं, लेकिन तत्कालीन समाज के लोगों का मोहभंग करने में उन्हें सफलता मिली। मध्यवर्ग उनका भक्त हो गया तथा उनके विचारों का क्रांति पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा।

इसके अलावा भी अन्य अनेक ऐसे विचारक क्रांति से पूर्व हुए, जिन्होंने अपने स्वाधीनता, तर्क और विज्ञान की अवधारणा से न केवल फ्रांस में बल्कि समूचे यूरोप में तर्क बुद्धि की एक नयी लहर पैदा की तथा धर्मकेन्द्रित सामन्ती समाजों में एक नयी क्रांतिकारी लहर पैदा की, जिसके मूल में तर्क, बुद्धि और विवेक था, लेकिन इस क्रांति की सबसे महत्वपूर्ण बात नागरिक अधिकारों का घोषणापत्र है, बाद में करीब-करीब जिसकी सारी धाराओं को संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों के घोषणापत्र में स्वीकार किया गया, इसमें करीब 17 मुख्य बातें हैं, लेकिन उनमें भी कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जो इसके जारी होने के दो सौ वर्ष से अधिक बीत जाने के बाद भी आज भारत सहित सारे विश्व के लिए प्रासंगिक है, क्योंकि इसमें निहित अनेक लक्ष्य अभी भी दुनिया में लागू नहीं हो सके हैं।

दुनिया भर में कहीं भी जाति, धर्म या भाषा के आधार पर जब किसी मनुष्य अथवा जाति का उत्पीड़न होता है, तो इस घोषणापत्र की याद आती है। इस घोषणापत्र ने न केवल फ्रांस को बल्कि सारी दुनिया को प्रेरित किया और आज भी कर रहा है। आज जब भारत में व्यापक रूप से मानवाधिकारों तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन किया जा रहा है। धर्म और जाति के आधार पर भेदभाव और उत्पीड़न किया जा रहा है, निरपराधों को जेलों में डाला जा रहा है, इस समय उस घोषणापत्र को एक बार पुन: याद करने की कितनी ज़रूरत है यह कहने की बात नहीं है। मुझे उस घोषणापत्र में एक बात सबसे महत्वपूर्ण लगती है, कि अन्याय के ख़िलाफ़ हर तरह का प्रतिरोध जायज है।

*साभार : mehnatkash.in*

## नागरिक अधिकारों का घोषणा पत्र

- मनुष्य के कुछ नैसर्गिक अधिकार हैं, जो उसे जन्म से प्राप्त होते हैं, जैसे अपनी सुरक्षा का अधिकार, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार, सम्पत्ति रखने का अधिकार आदि।
- कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। राज्य का जन्म व्यक्तियों के सामूहिक प्रयत्न का फल है, इसीलिए व्यक्ति को स्वयं या अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन और विधि निर्माण में भाग लेने का अधिकार है।
- किसी भी संस्था; चाहे वह परिवार हो या राज्य, यह कर्तव्य है कि वह नागरिक के अधिकारों की रक्षा करे।
- राज्य व्यक्ति का दमन न करे, इसके लिए उसके अधिकारों पर नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए।
- सत्ता यदि जन के अनुकूल नहीं है, तो उसे बदलने और ऐसा करने में शस्त्र तक उठाने का अधिकार है।
- दोषी घोषित होने के पूर्व तक प्रत्येक मानव निर्दोष होगा, यदि एक मानव को बंदी बनाना अत्यंत आवश्यक होगा, तो बंदी बनाने की प्रक्रिया में प्रत्येक प्रकार की प्रयुक्त की जाने वाली सख़्ती को कानून द्वारा कठोरतापूर्वक निर्धारित किया जाएगा।
- किसी व्यक्ति को उसके विचारों के लिए उत्पीड़ित नहीं किया जाएगा, यहाँ तक कि धार्मिक विचारों तक के लिए भी नहीं, जब तक कि उन विचारों की अभिव्यक्ति कानून के द्वारा स्थापित व्यवस्था को भंग करने वाली न हो।

—(हिस्टोरियंस हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड – हिस्ट्री ऑफ फ्रांस,1715–1815 से उद्धृत तथा अंग्रेजी से हिन्दी में लेखक द्वारा अनूदित)

# महात्मा गांधी : शांति के नायक

नरेन्द्र देव

"

2 अक्टूबर का दिन कृतज्ञ राष्ट्र के लिए राष्ट्रपिता की शिक्षाओं को स्मरण करने का एक और अवसर उपलब्ध कराता है। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में मोहनदास कर्मचंद गांधी का आगमन खुशी प्रकट करने के साथ-साथ हजारों भारतीयों को आकर्षित करने का पर्याप्त कारण उपलब्ध कराता है तथा इसके साथ उनके जीवन-दर्शन के बारे में भी ख़ुशी प्रकट करने का प्रमुख कारण है, जो बाद में गाँधी दर्शन के नाम से पुकारा गया। यह और भी आश्चर्यजनक बात है कि गाँधीजी के व्यक्तित्व ने उनके लाखों देशवासियों के दिल में जगह बनाई और बाद के दौर में दुनियाभर में असंख्य लोग उनकी विचारधारा की तरफ आकर्षित हुए।

इस बात का विशेष श्रेय गाँधीजी को ही दिया जाता है कि हिंसा और मानव निर्मित घृणा से ग्रस्त दुनिया में महात्मा गाँधी आज भी सार्वभौमिक सद्भावना और शांति के नायक के रूप में अडिग खड़े हैं और भी दिलचस्पत बात यह है कि गाँधीजी अपने जीवनकाल के दौरान शांति के अगुवा बनकर उभरे तथा आज भी विवादों को हल करने के लिए अपनी अहिंसा की विचार-धारा से वे मानवता को आश्चर्य में डालते हैं। बहुत हद तक यह महज एक अनोखी घटना ही नहीं है कि राष्ट्र ब्रिटिश आधिपत्यो के दौर में कंपनी शासन के विरूद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध के पथ पर आगे बढ़ा और उसके साथ ही गाँधीजी जैसे नेता के नेतृत्व में अहिंसा को एक सैद्धांतिक हथियार के रूप में अपनाया। यह बहुत आश्चर्यजनक है कि उनकी विचारधारा की सफलता का जादू आज भी जारी है।

क्या कोई इस तथ्य से इनकार कर सकता है कि अहिंसा और शांति का संदेश अब भी अंतर्राष्ट्रीय या द्विपक्षीय विवादों को हल करने के लिए विश्व नेताओं के बीच बेहद परिचित और आकर्षक शब्द है? यह कहने की जरूरत नहीं कि इस बात का मूल्यांकन करना कभी संभव नहीं हुआ कि भारत और दुनिया किस हद तक शांति के मसीहा महात्मा गाँधी के प्रति आकर्षित है।

हालाँकि यह शांति अलग तरह की शांति है। खुद शांति के नायक के शब्दों में—मैं शांति पुरूष हूं, लेकिन मैं किसी चीज की कीमत पर शांति नहीं चाहता। मैं ऐसी शांति चाहता हूं, जो आपको कब्र में नहीं तलाशनी पड़े। यह विशुद्ध रूप से एक ऐसा तत्व है, जो गाँधी को शांति पुरुष के रूप में उपयुक्त दर्जा देता है। यह उल्लेखनीय है कि शांति का अग्रदूत होने के बावजूद महात्मा गाँधी न सिर्फ किसी ऐसे व्यक्ति से अलग-थलग रहे, जो शांति के नाम पर कहीं भी या कुछ भी गलत मंजूर करेगा।

गाँधी जी की शांति की परिभाषा संघर्ष के बगैर नहीं थी। दरअसल उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में गोरों के शासन के विरूद्ध संघर्ष में बुद्धिमानी से उनका नेतृत्व किया था। इसके बाद 1915 में भारत वापस आने पर गाँधीजी ने समाज सुधारक के साथ, अस्पृश्यता और अन्य सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध दीर्घदर्शक के रूप में अहिंसा का इस्तेमाल किया। बाद में उन्होंने राजनीतिक परिदृश्य तक इसका विस्तारर किया और दीर्घकाल में अपने प्रेम, शांति और आपसी समायोजन के संदेश को हिंदू मुस्लिम भाई-चारे के लिए इस्तेमाल किया।

उनका मशहूर भक्ति गीत, 'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम...' अब भी हिंदू-मुस्लिम शांति के लिए राष्ट्र का श्रेष्ठ गीत है। यह हमें इस बहस में ले जाता है कि गाँधीजी के लिए शांति का क्या मतलब था। जी हां, कोई कह सकता है कि व्यापक तौर पर शांति उनके लिए अपने आप में कोई अंत नहीं था। इसके बजाय यह सिर्फ मानवता का बेहतर कल्याण सुनिश्चित करने के लिए एक माध्यम थी।

वस्तुत: महात्मा गाँधी सत्य के अग्रदूत थे। दरअसल उन्होंने खुद भी कहा था कि सच्चाई शांति की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में यंग इंडिया अखबार में महात्मा गाँधी के निम्नलिखित शब्द उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं, जो बिल्कुल प्रासंगिक हैं। महात्मा गाँधी ने लिखा—''हालाँकि हम भगवान की शान में जोर-जोर से गाते हैं और पृथ्वी पर शांत रहने के लिए कहते हैं, लेकिन आज न तो भगवान के प्रति वह

शान और न ही धरती पर शांति दिखाई देती है।'' महात्मा गाँधी ने यह शब्द दिसंबर 1931 में लिखे थे। 17 वर्ष बाद जनवरी 1948 में एक क्रूर हथियारे की गोली से उनका स्वर्गवास हो गया। यह बहुत दर्दनाक था कि सार्वभौमिक शांति और अंहिसा का संत हिंसा और घृणा का शिकार बना। लेकिन आज के दौर में भी महात्मा गांधी के 1931 के शब्द सत्य हैं।

आज दुनिया बहुत से और हर प्रकार के विवादों का सामना कर रही है, इसलिए हम देखते हैं कि सार्वभौमिक भाईचारे और शांति और सहअस्तित्व के बारे में गाँधीजी का बल आज भी पूरी तरह प्रासंगिक है। इसलिए उनकी शिक्षाएं आज भी देशभक्ति के सिद्धांत के साथ-साथ विभिन्न वैश्विक विवादों को हल करने या समाप्त करने के मार्ग और माध्यम सुझाती हैं। गाँधीजी की शिक्षाएं आज दुनियाभर में मानव प्रतिष्ठा और प्राकृतिक न्याय के मूल्य को बनाए रखने पर बल देती हैं।

यह स्पष्ट है कि आज की दुनिया में शांति के संकट के सिवाए कुछ भी स्थाई नजर नहीं आता है तथा शांति के इस मसीहा को इससे बेहतर श्रद्धांजलि और कुछ नहीं होगी कि शांति और आपसी सहनशीलता के हित में काम किया जाए। यही गाँधीवाद की प्रासंगिकता है।

*साभार : bharatdarshan.co.nz*

अमेरिका में अश्वेतों के अधिकारों के लिए संघर्ष के प्रतीक थे मार्टिन लूथर किंग। मार्टिन लूथर किंग ने अपनी पुस्तक स्ट्राइड टुवर्ड्स फ्रीडम में लिखा है—

**''मैं कई महीनों से सामाजिक सुधार की जिस पद्धति की तलाश में था, वह मुझे प्रेम और अहिंसा पर गांधीवादी बलाघात से मिली। मुझे लगा कि दलितों के लिए, उनके मुक्ति संघर्ष के लिए, वही तरीका नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से ठीक है।''**

मार्टिन लूथर किंग स्वयं को गांधी का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहते थे। कैसा संयोग था यह कि उत्तराधिकार में उन्होंने महात्मा गांधी जैसी मौत भी पाई थी। वे महात्मा गांधी को अपनी कविता में स्मरण करते हैं

मुझे नहीं मालूम किस धातू का बना था वह
उसकी आंखों में गंगाजल ही नहीं
थेम्स, मिसीसिपी, वोल्गा और ह्वांगहो
सभी तो लहरती थीं
उसमें हिमालय ही नहीं
ऑल्पस की ऊंचाई भी समाहित थी
उनमें हिंद महासागर ही नहीं
काला सागर, प्रशांत महासागर
सभी अपनी गहनता लिए बैठे थे
कैसे थे उनके संघर्ष के हथियार
नमक सत्याग्रह, दांडी प्रयाण
चर्खा, खादी, असहयोग और अनशन
कैसी थी उनकी लड़ाई
जिसमें विद्वेष घृणा के लिए
कोई जगह नहीं थी।
हड्डियों के उस ढांचे में
कैसा था वह आत्मबल
मैं सर्वदा उनके प्रसाद का अभिलाषी रहा
हूं और रहूंगा।

*(8वें दशक के चर्चित नवगीतकार और वरिष्ठ रचनाकार **उमाकांत मालवीय** के 'वह महात्मा प्रार्थना में झुकता है' से साभार।)*

*असहिष्णुता सच्ची लोकतांत्रिक भावना के विकास में बाधक है : महात्मा गांधी*

.........

# गांधी का शांति दृष्टिकोण

**इला गांधी**

**"**

***1993 में पीटरमैरिट्सबर्ग में इला गांधी द्वारा दिए गए नौवें डेसमंड टूटू शांति व्याख्यान के अंश। यह व्याख्यान दक्षिण अफ्रीका में विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच समझ और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए धर्म और शांति पर विश्व सम्मेलन द्वारा आयोजित किया जाता है।***

गांधीजी का कहना था कि जब तक सभी को समान अवसर न मिले तब तक सच्ची और स्थायी शांति नहीं हो सकती :

> ''जब आप खुद को राजनीतिक अधिकारों के पैमाने पर नीचे पाते हैं तो आपके पास एक अच्छी सामाजिक व्यवस्था नहीं हो सकती है, न ही आप राजनीतिक अधिकारों और विशेषाधिकारों का उपयोग करने के लिए उपयुक्त हो सकते हैं जब तक कि आपकी सामाजिक व्यवस्था तर्क और न्याय पर आधारित न हो। आपके पास एक अच्छी आर्थिक व्यवस्था नहीं हो सकती है जब तक आपकी सामाजिक व्यवस्थाएँ अपूर्ण हैं। यदि आपके धार्मिक विचार निम्न और घटिया हैं, तो आप महिलाओं के लिए समान दर्जा सुनिश्चित करने में सफल नहीं हो सकते हैं, और सभी के लिए अवसरों तक पहुँच ही अंतिम उपाय है जो भारत के लोगों को स्वतंत्रता दिलाएगा।''
> इसलिए जब हम शांति की बात करते हैं जैसा कि गांधीजी ने देखा था तो हमें व्यापक समाधान तलाशने होंगे। मैं गांधीजी के जीवन से तीन प्रकार के सबक लेती हूं :

1.) शांति और लोकतंत्र के लिए संघर्ष का लक्ष्य सभी की भलाई के लिए है; सिर्फ बहुमत की भलाई नहीं। 2.) इसे पाने के लिए व्यक्ति को बलिदान देने के लिए तैयार रहना होगा। 3.) वह राजनीतिक शक्ति अपने आप में शांति और लोकतंत्र का परिणाम नहीं है; हमें शांति और लोकतंत्र के लिए काम करना होगा और प्रयास करना होगा।

आज हमारी स्थिति में इन पाठों को खोजने पर, यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे सामने एक लंबी और कठिन राह है।

गांधीजी के जीवन ने हमें एक बहुत स्पष्ट सबक सिखाया है : सिद्धांतों को स्थापित करना आसान है, लेकिन उन्हें व्यवहार में लाना बहुत कठिन है। सभी के लिए शांति और अच्छे जीवन में विश्वास करना बहुत अच्छी बात है लेकिन अंतिम चरण वह है जिसे हमने सीखा है या जिस पर विश्वास करना शुरू किया है उसे व्यवहार में लाना है। यह अंतिम चरण ही अंतत: हमारे जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करता है।

हमारे देश में हिंसा को लेकर गोल्डस्टोन कमीशन के सामने कई सवाल रखे गए हैं। राजनीतिक हिंसा का प्रश्न, पुलिस और सेना की हिंसा का प्रश्न, 'तीसरी ताकत' का प्रश्न, आदिवासी या जातीय हिंसा का प्रश्न, इत्यादि। फिर भी पर्याप्त पानी, स्वच्छता, चिकित्सा देखभाल, आवास और सामाजिक सुरक्षा के गैर-प्रावधान के कारण होने वाली संरचनात्मक हिंसा—जिसके कारण हमारे हजारों लोगों की साप्ताहिक मृत्यु होती है—को संबोधित नहीं किया गया है।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका आये तो उन्होंने देखा कि लोगों ने उनके साथ किये गये कठोर व्यवहार को स्वीकार कर लिया था। अनुबंधित श्रमिकों ने अपने नियोक्ताओं द्वारा उनके साथ किए गए कठोर व्यवहार के परिणामस्वरूप अपने अनुबंधों से भागने या आत्महत्या करने का विकल्प चुना। भारत में गरीब खेत मजदूरों को भी इसी तरह के व्यवहार का सामना करना पड़ा और उन्होंने भी इन परिस्थितियों का सामना किया। गांधीजी ने उनमें गरिमा और दिशा की भावना पैदा की। उन्होंने अपने अधिकारों के बारे में उनकी चेतना जगाई और उनमें अपने ऊपर होने वाले उत्पीड़न का विरोध करने की इच्छा जागृत की।

दक्षिण अफ्रीका में मुक्ति के संघर्ष को भी लोगों से वही प्रतिक्रिया मिली जो गांधीजी के अवज्ञा अभियानों को मिली थी। अपनी दुर्दशा की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए हजारों लोग सड़कों पर उतर आए। यह विडंबनापूर्ण है कि दक्षिण अफ्रीका में इस तरह की सामूहिक कार्रवाई को हिंसक माना जाता है, जबकि टाउनशिप में क्रूरता और हजारों लोगों की जान जाने पर अधिकारियों की ओर से बहुत कम प्रतिक्रिया हुई है। हम पार्टियों को शांति समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए उकसाने के प्रयास देख रहे हैं, फिर भी लोगों की कई बुनियादी चिंताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। जैसे-जैसे हम 20वीं सदी के अंत की ओर बढ़ रहे हैं—चाहे बातचीत कितनी भी आशाजनक क्यों न हो—दक्षिण अफ्रीका में शांति और विश्व शांति वास्तव में गंभीर मुद्दे हैं। तो शायद गांधीजी का जीवन आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है।

इसलिए राजनीतिक शक्ति होना शांति की दिशा में पहला कदम है। हम सभी को चीजों को बदलने की जिम्मेदारी स्वीकार करनी होगी। हमारी जिम्मेदारी है कि हम उन कुछ सिद्धांतों को अपनाएं जिनके द्वारा गांधीजी जीए गए थे। हमें साझाकरण पर ध्यान देना शुरू करना होगा और यह सुनिश्चित करना होगा कि संसाधनों का वितरण समान रूप से हो। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि लोग बदलाव को देख और महसूस कर सकें और दुनिया में अपने लिए एक जगह पहचानने में सक्षम हो सकें।

राजनीतिक उत्पीड़न के अलावा, दक्षिण अफ्रीका में आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक, पर्यावरणीय और लैंगिक उत्पीड़न भी है। जब हम शांति की बात करते हैं, तो हम अंधाधुंध हत्याओं और संपत्ति के विनाश को हमारे लोगों द्वारा सामना की जाने वाली गरीबी, अशिक्षा, धार्मिक असहिष्णुता, पर्यावरणीय खतरों और लैंगिक उत्पीड़न से अलग करके नहीं देख सकते।

लेकिन समस्याओं को पहचानने के बाद समाधान तलाशना भी जरूरी है। स्पष्ट है कि राजनीतिक सत्ता परिवर्तन से ही शांति स्थापित नहीं हो सकेगी। डी क्लार्क को निश्चित रूप से लागू शांति की पूरी अवधारणा पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

तो हम अपने देश में शांति प्राप्त करने के लिए क्या कर सकते हैं? हम एक ऐसे समाज के निर्माण में कैसे मदद कर सकते हैं जहां शांति उसके सभी लोगों की केंद्रीय चिंता होगी? मुझे लगता है कि गांधीजी निम्नलिखित को शांति के लिए आवश्यक शर्तें मानेंगे :

सत्ता में बैठे लोगों को, चाहे वे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, नागरिक या प्रशासनिक हों, शांति के प्रति समग्र दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता है। यदि हम अपने पोते-पोतियों और परपोते-पोतियों के लिए एक बेहतर देश चाहते हैं तो हमें कार्रवाई करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि ऐसा समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाए और शांति के मुद्दे को संबोधित करने में एक व्यापक दृष्टिकोण का उपयोग किया जाए। यह सुनिश्चित करना भी हमारी जिम्मेदारी है कि समुदाय इस दृष्टिकोण को समझे और इसका अनुमोदन करे। हमें विशेषज्ञता और धन साझा करने के लिए तैयार रहना चाहिए और साथ ही भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए समुदाय की क्षमता विकसित करनी चाहिए।

हम नई सरकार से अपने आप चीजों को बदलने की उम्मीद नहीं कर सकते। हमें बदलाव लाने की जिम्मेदारी लेनी होगी और इसमें हम राज्य की सहायता ले सकते हैं। सामुदायिक कार्यक्रमों के माध्यम से एक समतापूर्ण समाज के निर्माण की प्रक्रिया शुरू करते समय हमें प्रेम, देखभाल, साझाकरण और सांप्रदायिक चेतना का माहौल विकसित करने की आवश्यकता है। हम निश्चित रूप से नई सरकार से ऐसी परियोजनाओं के लिए अधिक समर्थन प्राप्त करने में सक्षम हो सकते हैं।

हमें सक्रिय रूप से यह सुनिश्चित करके अपने बच्चों और युवाओं के बीच अहिंसा की संस्कृति का निर्माण करने की आवश्यकता है कि हम (और वे) युद्ध के खिलौनों या हिंसक खेलों, मीडिया, किताबों, कहानियों आदि का समर्थन न करें, बल्कि प्रतिरोध की संस्कृति को बढ़ावा दें। अन्याय के लिए. हमें अपने सभी लोगों के बीच सांप्रदायिक जिम्मेदारी विकसित करने की जरूरत है। हमें काम की संस्कृति बनाने और काम की गरिमा को पहचानने की जरूरत है, ताकि हम न केवल अपनी बल्कि पूरे समुदाय की जरूरतों को पूरा करना सीख सकें।

हमें एक दक्षिण अफ्रीकी पहचान विकसित करने की ज़रूरत है, ताकि हम रंगभेद के तहत जीवन के माध्यम से हमारे भीतर अंतर्निहित नस्लवाद और लिंगवाद से छुटकारा पा सकें और अपने लोगों और अपने देश से प्यार करना शुरू कर सकें।

हमें समुदाय की जरूरतों के प्रति सतर्क रहना चाहिए और एक अधिक न्यायसंगत समाज की नींव रखना शुरू करना चाहिए जहां हर किसी को अवसरों तक पहुंच मिल सके। वर्तमान बेरोजगारी की स्थिति को गंभीरता से चुनौती देने और सभी लोगों के लिए काम के अवसर पैदा करने की जरूरत है।

ये वे लक्ष्य हैं जो गांधीजी ने भारत में विकास कार्यों के लिए निर्धारित किए थे और मुझे लगता है कि वे आज भी हम पर लागू होते हैं। शायद केवल तभी जब ये लक्ष्य हासिल हो जाएंगे, क्या हम खुद से कह पाएंगे कि हमने अपने देश में शांति हासिल कर ली है, एक ऐसी शांति जिसके लिए गांधीजी जीए, काम किए और मर गए।

*साभार : gandhiashramsevagram.org/gandhi-articles*

# शांति एवं भाईचारा वर्तमान विश्व की आवश्यकता

**विमल कुमार**

"

वर्तमान दौर में हम एक वैश्वीकृत दुनिया में रह रहे हैं। यह दुनिया एक गाँव के रूप में तब्दील हो गई है जिसे मैकलुहान ने 'ग्लोबल विलेज' की संज्ञा दी है। एक प्रक्रिया और प्रवाह के रूप में वैश्वीकरण ने दुनिया को एक दूसरे से जोड़ते हुए अंतरनिर्भरता को बढ़ावा दिया है। वैश्वीकरण के इस दौर में युद्ध, असंतोष, अवसाद, पलायन, पर्यावरणीय असंतुलन संपूर्ण विश्व के समक्ष प्रमुख चुनौती है। इसलिए वर्तमान विश्व की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता शांति एवं भाईचारे की स्थापना करना है।

वैश्विक शांति की स्थापना हेतु प्रतिवर्ष 21 सितंबर को अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस या 'विश्व शांति दिवस' के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा इसकी घोषणा 1981 में की गई तथा 1982 में पहली बार 'अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस' मनाया गया। 1982 से 2001 तक अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस सितंबर माह के तीसरे मंगलवार को मनाया जाता था लेकिन सन 2002 से 21 सितंबर को 'अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस' मनाने की तारीख निर्धारित की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य है अहिंसा और संघर्ष विराम का अवलोकन करते हुए शांति के आदर्शों को मजबूत करना। संयुक्त राष्ट्र संघ कला, साहित्य, सिनेमा संगीत एवं खेल जैसे क्षेत्रों से अंतर्राष्ट्रीय शांति को बढ़ावा देने के लिए शांति दूतों की नियुक्ति भी करता है। इस दिवस को सफेद कबूतर उड़ाकर शांति का पैगाम भी दिया जाता है।

अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस की इस वर्ष (2023) की थीम 'शांति के लिए कार्यवाही : वैश्विक लक्ष्यों के लिए हमारी महत्त्वकांक्षा' है। यह विषय शांति को बढ़ावा देने में हमारी व्यक्तिगत और सामूहिक जिम्मेदारी को रेखांकित करता है। इस बार फोकस के तीन प्रमुख क्षेत्र हैं 1. असमानता से लड़ना, 2. जलवायु परिवर्तन पर कार्यवाही और 3. मानवाधिकारों को बढ़ावा देना और उनकी रक्षा करना।

वर्तमान विश्व युद्ध, संघर्ष, पलायन, महामारी एवं पर्यावरण संकट जैसी अनगिनत समस्याओं का सामना कर रहा है। वर्तमान विश्व को सशंकित दृष्टि से देखते हुए इतिहासकार युवाल नोआ हरारी अपनी पुस्तक '21 Lessons for the 21st Century' में कहते हैं कि, अपनी प्रजाति को संगठित करने के लिए हमने मिथक रचे। खुद को शक्तिशाली बनाने के लिए हमने प्रकृति को वश में किया। अपने विचित्र उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हम जीवन की पुनर्रचना कर रहे हैं। लेकिन क्या हम अब भी खुद को जान पाए हैं या हमारे आविष्कार हमें अप्रासंगिक बना देंगे ?'

लंबे उपनिवेशवादी दौर से मुक्त हुई दुनिया के समक्ष आज भी साम्राज्यवाद, बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद की गंभीर चुनौती है जिसने गहरे असंतोष को जन्म दिया है। हथियारों की होड़ ने सम्पूर्ण विश्व को अब बारूद के मकान के रूप में तब्दील कर दिया है। हथियार निर्माण अब एक उद्योग का रूप ले चुका है जिसका उद्देश्य वैश्विक तनाव निर्मित कर हथियार बेचना है। रूस-यूक्रेन युद्ध समकालीन दुनिया का एक नग्न यथार्थ है कि विज्ञान एवं तकनीकी विकास के साथ हम आज भी युद्धों में उलझे हुए हैं। युद्ध और आंतरिक विघटन से पलायन की समस्या उत्पन्न हो रही है जिससे शरणार्थी समस्या समस्त विश्व के समक्ष एक बड़ी चुनौती साबित हो रही है।

संप्रदायवाद एवं आतंकवाद वैश्विक शांति के समक्ष सबसे बड़े अवरोधक हैं। विविध प्रकार की आतंकी गतिविधियों से दुनिया के किसी न किसी कोने में हर रोज अस्थिरता देखने को मिलती है।

असंतुलित आर्थिक विकास भी संपूर्ण विश्व के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है। अंधाधुंध औद्योगीकरण ने पर्यावरण असंतुलन को जन्म दिया है जोकि वैश्विक शांति की स्थापना में बाधक है।

वैश्विक शांति हेतु अब तक अनगिनत उपाय किए गए हैं।

युद्ध की परिस्थितियों तथा हथियारों की होड़ को खत्म करने के लिए निशस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण जैसी अवधारणाएं काम कर रही हैं। दुनिया भर को परमाणु खतरों से बचाने के लिए अब तक पीटीबीटी(1963), एनपीटी(1968) तथा सीटीबीटी(1996) जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण संधियाँ की गई हैं।

वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय संकट से निपटने के लिए अब तक अनगिनत प्रयास किए गए हैं। स्टॉकहोम सम्मेलन(1972) से लेकर ग्लासगो(2021) तक सतत प्रयास इसके प्रमुख उदाहरण हैं। धारणीय विकास पर्यावरण संतुलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

असंतोष के असंख्य कारणों को देखते हुए यह लगता है कि अब शांति प्राप्त करने के लिए हथियार डालने से कहीं अधिक की आवश्यकता है। इसके लिए ऐसे समाजों के निर्माण की आवश्यकता है जहां सभी सदस्यों को लगता है कि वे विकास कर सकते हैं। इसमें एक ऐसी दुनिया बनाना शामिल है जिसमें लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। आज विश्व के सभी धर्म, संप्रदाय, पंथ और आध्यात्मिक आस्था वाले समूहों में समन्वय की आवश्यकता है। अब परंपराओं और सिद्धांतों का सार लेकर रहन सहन के स्वस्थ तौर-तरीकों को विकसित करने की आवश्यकता है। आज सामाजिक संगठन की सबसे छोटी इकाई परिवार के पुनर्गठन की भी आवश्यकता है जोकि सदैव मानव की 'प्रथम पाठशाला' रही है।

वैश्विक शांति स्थापित करने में भारत सदैव अग्रणी देशों में शामिल रहा है। प्राचीन काल से ही शांति एवं सद्भाव भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताएं रही हैं। भारत अनेक धर्मों की जन्मस्थली है। इन धर्मों ने दुनिया भर में शांति एवं मानवता का संदेश दिया। 'वसुधैव कुटुंबकम' की अवधारणा हिंदू धर्म की प्रमुख विशेषता रही है। बौद्ध एवं जैन धर्म ने दुनिया भर में अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह का पाठ पढ़ाया। सल्तनत काल, मुगल काल एवं ब्रिटिश काल में भी भारत ने सहिष्णुता को ही बढ़ावा दिया। भारत ने बाहर से आयी संस्कृतियों को भी अपने में समाहित किया। विभिन्न धर्मों के असंख्य संप्रदायों ने भी सदैव शांति एवं सद्भाव स्थापित करने की दिशा में न सिर्फ सैद्धांतिक विचारों का प्रतिपादन किया बल्कि सक्रियतापूर्वक आम जनमानस में उसका प्रचार प्रसार भी किया। उपनिवेशवाद के दौर में भी भारत ने रचनात्मक तरीके से संपूर्ण विश्व को शांति का संदेश दिया। स्वामी विवेकानंद का शिकागो में दिया गया भाषण आखिर कौन भूल सकता है? पराधीनता की स्थिति में भी यहां के विद्वानों ने न सिर्फ भारतीय समाज को जागृत किया बल्कि उनका असर पूरी दुनिया पर पड़ा। महात्मा गाँधी और उनका चिंतन मुख्य रूप से सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के तरीके पूरी दुनिया में लोकप्रिय हैं। महात्मा गाँधी के अहिंसक आंदोलन ने कई पराधीन देशों में स्वतंत्रता की अभिलाषा उत्पन्न की और उनके साधन अनेक देशों को स्वाधीनता प्राप्ति में सहायक साबित हुए। नेल्सन मंडेला जैसे लोगों को स्वाधीनता प्राप्ति की प्रेरणा और आत्मबल गाँधी से ही मिला। आज गाँधी की 'सर्वोदय' की अवधारणा समस्त विश्व के समक्ष विकास का एक समावेशी मॉडल है। महात्मा गांधी के विचारों की उपयोगिता और प्रभाव देखते हुए ही प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर उनके जन्मदिन को 'अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप में मनाया जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात शीत युद्ध के दौर में भारत ने पूरी दुनिया को शांति एवं भाईचारे का संदेश दिया। गुटनिरपेक्षता की नीति ने आजाद हुए नए मुल्कों को नई राह दिखाई वहीं पंचशील सिद्धांतों की निम्नलिखित बातों ने समस्त विश्व को शांतिपूर्ण बनाने में योगदान दिया। पंचशील के ये 5 सिद्धांत समस्त विश्व को सद्भावना का संदेश देते हैं-

(1) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना। (2) एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक कार्रवाई न करना। (3) एक दूसरे के आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप न करना। (4) समानता और परस्पर लाभ की नीति का पालन करना तथा (5) शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति में विश्वास रखना।

आज वैश्विक शांति संपूर्ण विश्व की आवश्यकता है। यह एक दिन में संभव नहीं हो सकता। इसके लिए संपूर्ण विश्व को अपने निजी स्वार्थों का त्याग करते हुए मानवता को साध्य बनाना होगा। 'विश्व नागरिकता' की अवधारणा को साकार करते हुए मानव हितों के साथ-साथ प्रकृति का भी संरक्षण करना होगा।

हम कह सकते हैं कि आज संपूर्ण विश्व को पुनर्विचार की आवश्यकता है कि कैसे आपस में शांति एवं भाईचारे को कायम किया जाए। अंतर्राष्ट्रीय शांति दिवस एक विशेष अवसर है जब हम वैश्विक शांति स्थापित करने की दिशा में नवीन पहल कर सकते हैं।

*साभार : drishtiias.com/hindi*

**सब से पुर-अम्न वाक़िया ये है, आदमी आदमी को भूल गया**

**—जौन एलिया—**

# साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज

**भगत सिंह**

"

***1919 के जालियँवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिष सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरु किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में साम्प्रदायिक दंगों पर लम्बी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम नेताओं में सुलहनामा लिखाकर दंगों को रोकने के यत्न किये। इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के 'किरती' में छपा। यह लेख इस समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों का सार है।***

भारत वर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का अभी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वश चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार-काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिख या हिन्दू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का ईश्वर ही मालिक है।

ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नजर आता है। इन 'धर्मों' ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है। और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है। और हमने देखा है कि इस अन्धविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठण्डा रखता है, बाकी सब के सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रौब को कायम रखने के लिए डण्डे लाठियाँ, तलवारें-छुरें हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर-फोड़-फोड़कर मर जाते हैं। बाकी कुछ तो फाँसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने आ जाता है।

यहाँ तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे साम्प्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज्य-स्वराज्य' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठने वालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो साम्प्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, जमीन खोदने से सैकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं। और साम्प्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, अखबार वाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय, किसी समय बहुत ऊँचा समझा जाता था। आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक-दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे-मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएँ भड़काते हैं और परस्पर सिर फुटौव्वल करवाते हैं। एक-दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक बहुत कम है जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शान्त रहा हो।

अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, साम्प्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल-मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था लेकिन इन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, साम्प्रदायिक बनाना, लड़ाई-झगड़े करवाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता को नष्ट

करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आंखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं और दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

जो लोग असहयोग के दिनों के जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहाँ थे वे दिन कि स्वतन्त्रता की झलक सामने दिखाई देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्रा बन गया है। बस यही तीसरा लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी वही नौकरशाही आज अपनी जड़ें इतनी मजबूत कर चुकी हैं कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन साम्प्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं व पत्रकारों ने ढेरों कुर्बानियाँ दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया जिससे आजकल के बहुत से साम्प्रदायिक नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धान्तों में से यह एक मुख्य सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के कारण ही तबलीग, तनकीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है तो वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है दरअसल भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी और को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धान्त ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता। लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिये और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की सांस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्राता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं वहाँ भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहाँ नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इन्सान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है इसलिए अब वहाँ से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की सुनने में आयी। वह यह कि वहाँ दंगों में ट्रेड यूनियन के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन् सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्गचेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो साम्प्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं। उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से-हिन्दू, मुसलमान या सिख रूप में नहीं, वरन सभी को पहले इन्सान समझते हैं, फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है। भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए। उन्हें यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, और दंगे हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं। यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते है। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें।

हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमे बचा लेंगे।

# अछूत समस्या

**भगत सिंह**

“

***काकीनाडा में 1923 मे कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। मुहम्मद अली जिन्ना ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे आजकल की अनुसूचित जातियों को, जिन्हें उन दिनों 'अछूत' कहा जाता था, हिन्दू और मुस्लिम मिशनरी संस्थाओं में बाँट देने का सुझाव दिया। हिन्दू और मुस्लिम अमीर लोग इस वर्गभेद को पक्का करने के लिए धन देने को तैयार थे। इस प्रकार अछूतों के यह 'दोस्त' उन्हें धर्म के नाम पर बाँटने की कोशिशें करते थे। उसी समय जब इस मसले पर बहस का वातावरण था, भगतसिंह ने 'अछूत का सवाल' नामक लेख लिखा। इस लेख में श्रमिक वर्ग की शक्ति व सीमाओं का अनुमान लगाकर उसकी प्रगति के लिए ठोस सुझाव दिये गये हैं। भगतसिंह का यह लेख जून, 1928 के 'किरती' में विद्रोही नाम से प्रकाशित हुआ था।***

हमारे देश जैसे बुरे हालात किसी दूसरे देश के नहीं हुए। यहाँ अजब-अजब सवाल उठते रहते हैं। एक अहम सवाल अछूत-समस्या है। समस्या यह है कि 30 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में जो 6 करोड़ लोग अछूत कहलाते हैं, उनके स्पर्श मात्र से धर्म भ्रष्ट हो जाएगा! उनके मन्दिरों में प्रवेश से देवगण नाराज हो उठेंगे! कुएं से उनके द्वारा पानी निकालने से कुआँ अपवित्र हो जाएगा! ये सवाल बीसवीं सदी में किए जा रहे हैं, जिन्हें कि सुनते ही शर्म आती है।

हमारा देश बहुत अध्यात्मवादी है, लेकिन हम मनुष्य को मनुष्य का दर्जा देते हुए भी झिझकते हैं जबकि पूर्णतया भौतिकवादी कहलाने वाला यूरोप कई सदियों से इन्कलाब की आवाज उठा रहा है। उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की क्रांतियों के दौरान ही समानता की घोषणा कर दी थी। आज रूस ने भी हर प्रकार का भेदभाव मिटा कर क्रांति के लिए कमर कसी हुई है। हम सदा ही आत्मा-परमात्मा के वजूद को लेकर चिन्तित होने तथा इस जोरदार बहस में उलझे हुए हैं कि क्या अछूत को जनेऊ दे दिया जाएगा? वे वेद-शास्त्र पढ़ने के अधिकारी हैं अथवा नहीं? हम उलाहना देते हैं कि हमारे साथ विदेशों में अच्छा सलूक नहीं होता। अंग्रेजी शासन हमें अंग्रजों के समान नहीं समझता। लेकिन क्या हमें यह शिकायत करने का अधिकार है? सिन्ध के एक मुस्लिम सज्जन श्री नूर मुहम्मद ने, जो बम्बई कौंसिल के सदस्य हैं, इस विषय पर 1926 में खूब कहा-

"If the Hundu society refuses to allow other human beings, fellow creatures so that to attend public school, and if the president of local board representing so many lakhs of people in this house refuses to allow his fellows and brothers the elementary human right of having water to drink, what right have they to ask for more rights from the bureaucracy? Before we accuse people coming from other lands, we should see how we ourselves behave toward our own people. How can we ask for greater political rights when we ourselves deny elementary rights of human beings."

वे कहते हैं कि जब तुम एक इन्सान को पीने के लिए पानी देने से भी इनकार करते हो, जब तुम उन्हें स्कूल में भी पढ़ने नहीं देते तो तुम्हें क्या अधिकार है कि अपने लिए अधिक अधिकारों की माँग करो? जब तुम एक इन्सान को समान अधिकार देने से भी इनकार करते हो तो तुम अधिक राजनीतिक अधिकार माँगने के अधिकारी कैसे बन गए?

बात बिल्कुल खरी है। लेकिन यह क्योंकि एक मुस्लिम ने कही है इसलिए हिन्दू कहेंगे कि देखो, वह उन अछूतों को मुसलमान बना कर अपने में शामिल करना चाहते हैं।

जब तुम उन्हें इस तरह पशुओं से भी गया-बीता समझोगे तो वह जरूर ही दूसरे धर्मों में शामिल हो जाएंगे, जिनमें उन्हें अधिक अधिकार मिलेंगे, जहाँ उनसे इन्सानों-जैसा व्यवहार किया जाएगा। फिर यह कहना कि देखो जी, ईसाई और मुसलमान हिन्दू कौम को नुकसान पहुँचा रहे हैं, व्यर्थ होगा।

कितना स्पष्ट कथन है, लेकिन यह सुन कर सभी तिलमिला उठते हैं। ठीक इसी तरह की चिन्ता हिन्दुओं को भी हुई। सनातनी पण्डित भी कुछ-न-कुछ इस मसले पर सोचने लगे। बीच-बीच में बड़े 'युगांतरकारी' कहे जाने वाले भी शामिल हुए। पटना में हिन्दू महासभा का सम्मेलन लाला लाजपतराय—जोकि अछूतों के बहुत पुराने समर्थक चले आ रहे हैं- की अध्यक्षता में हुआ, तो जोरदार बहस छिड़ी। अच्छी नोंक-झोंक हुई। समस्या यह थी कि अछूतों को यज्ञोपवीत धारण करने का हक है अथवा नहीं? तथा क्या उन्हें वेद-शास्त्रों का अध्ययन करने का अधिकार है? बड़े-बड़े समाज-सुधारक तमतमा गये, लेकिन लालाजी ने सबको सहमत कर दिया तथा यह दो बातें स्वीकृत कर हिन्दू धर्म की लाज रख ली। वरना जरा सोचो, कितनी शर्म की बात होती। कुत्ता हमारी गोद में बैठ सकता है। हमारी रसोई में नि:संग फिरता है, लेकिन एक इन्सान का हमसे स्पर्श हो जाए तो बस धर्म भ्रष्ट हो जाता है। इस समय मालवीय जी जैसे बड़े समाज-सुधारक, अछूतों के बड़े प्रेमी और न जाने क्या-क्या पहले एक मेहतर के हाथों गले में हार डलवा लेते हैं, लेकिन कपड़ों सहित स्नान किये बिना स्वयं को अशुद्ध समझते हैं! क्या खूब यह चाल है! सबको प्यार करने वाले भगवान की पूजा करने के लिए मन्दिर बना है लेकिन वहाँ अछूत जा घुसे तो वह मन्दिर अपवित्र हो जाता है! भगवान रुष्ट हो जाता है! घर की जब यह स्थिति हो तो बाहर हम बराबरी के नाम पर झगड़ते अच्छे लगते हैं? तब हमारे इस रवैये में कृतघ्नता की भी हद पाई जाती है। जो निम्नतम काम करके हमारे लिए सुविधाओं को उपलब्ध कराते हैं उन्हें ही हम दुरदुराते हैं। पशुओं की हम पूजा कर सकते हैं, लेकिन इन्सान को पास नहीं बिठा सकते!

आज इस सवाल पर बहुत शोर हो रहा है। उन विचारों पर आजकल विशेष ध्यान दिया जा रहा है। देश में मुक्ति कामना जिस तरह बढ़ रही है, उसमें साम्प्रदायिक भावना ने और कोई लाभ पहुँचाया हो अथवा नहीं लेकिन एक लाभ जरूर पहुँचाया है। अधिक अधिकारों की माँग के लिए अपनी-अपनी कौमों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता सबको हुई। मुस्लिमों ने जरा ज्यादा जोर दिया। उन्होंने अछूतों को मुसलमान बना कर अपने बराबर अधिकार देने शुरू कर दिए। इससे हिन्दुओं के अहम को चोट पहुँची। स्पर्धा बढ़ी। फसाद भी हुए। धीरे-धीरे सिखों ने भी सोचा कि हम पीछे न रह जायें। उन्होंने भी अमृत छकाना आरम्भ कर दिया। हिंदू-सिखों के बीच अछूतों के जनेऊ उतारने या केश कटवाने के सवालों पर झगड़े हुए। अब तीनों कौमें अछूतों को अपनी-अपनी ओर खींच रही है। इसका बहुत शोर-शराबा है। उधर ईसाई चुपचाप उनका रुतबा बढ़ा रहे हैं। चलो, इस सारी हलचल से ही देश के दुर्भाग्य की लानत दूर हो रही है।

इधर जब अछूतों ने देखा कि उनकी वजह से इनमें फसाद हो रहे हैं तथा उन्हें हर कोई अपनी-अपनी खुराक समझ रहा है तो वे अलग ही क्यों न संगठित हो जाएं? इस विचार के अमल में अंग्रेजी सरकार का कोई हाथ हो अथवा न हो लेकिन इतना अवश्य है कि इस प्रचार में सरकारी मशीनरी का काफी हाथ था। 'आदि धर्म मण्डल जैसे संगठन उस विचार के प्रचार का परिणाम हैं।

अब एक सवाल और उठता है कि इस समस्या का सही निदान क्या हो? इसका जबाब बड़ा अहम है। सबसे पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि सब इन्सान समान हैं तथा न तो जन्म से कोई भिन्न पैदा हुआ और न कार्य-विभाजन से। अर्थात् क्योंकि एक आदमी गरीब मेहतर के घर पैदा हो गया है, इसलिए जीवन भर मैला ही साफ करेगा और दुनिया में किसी तरह के विकास का काम पाने का उसे कोई हक नहीं है, ये बातें फिजूल हैं। इस तरह हमारे पूर्वज आर्यों ने इनके साथ ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया तथा उन्हें नीच कह कर दुत्कार दिया एवं निम्नकोटि के कार्य करवाने लगे। साथ ही यह भी चिन्ता हुई कि कहीं ये विद्रोह न कर दें, तब पुनर्जन्म के दर्शन का प्रचार कर दिया कि यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पापों का फल है। अब क्या हो सकता है? चुपचाप दिन गुजारो! इस तरह उन्हें धैर्य का उपदेश देकर वे लोग उन्हें लम्बे समय तक के लिए शान्त करा गए। लेकिन उन्होंने बड़ा पाप किया। मानव के भीतर की मानवीयता को समाप्त कर दिया। आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बन की भावनाओं को समाप्त कर दिया। बहुत दमन और अन्याय किया गया। आज उस सबके प्रायश्चित का वक्त है।

इसके साथ एक दूसरी गड़बड़ी हो गयी। लोगों के मनों में आवश्यक कार्यों के प्रति घृणा पैदा हो गई। हमने

जुलाहे को भी दुत्कारा। आज कपड़ा बुननेवाले भी अछूत समझे जाते हैं। यू. पी. की तरफ कहार को भी अछूत समझा जाता है। इससे बड़ी गड़बड़ी पैदा हुई। ऐसे में विकास की प्रक्रिया में रुकावटें पैदा हो रही हैं।

इन तबकों को अपने समक्ष रखते हुए हमें चाहिए कि हम न इन्हें अछूत कहें और न समझें। बस, समस्या हल हो जाती है। नौजवान भारत सभा तथा नौजवान कांग्रेस ने जो ढंग अपनाया है वह काफी अच्छा है। जिन्हें आज तक अछूत कहा जाता रहा उनसे अपने इन पापों के लिए क्षमायाचना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने जैसा इन्सान समझना, बिना अमृत छकाए, बिना कलमा पढ़ाए या शुद्धि किए उन्हें अपने में शामिल करके उनके हाथ से पानी पीना,यही उचित ढंग है। और आपस में खींचतान करना और व्यवहार में कोई भी हक न देना, कोई ठीक बात नहीं है।

जब गाँवों में मजदूर-प्रचार शुरू हुआ उस समय किसानों को सरकारी आदमी यह बात समझा कर भड़काते थे कि देखो, यह भंगी-चमारों को सिर पर चढ़ा रहे हैं और तुम्हारा काम बंद करवाएंगे। बस किसान इतने में ही भड़क गए। उन्हें याद रहना चाहिए कि उनकी हालत तब तक नहीं सुधर सकती जब तक कि वे इन गरीबों को नीच और कमीन कह कर अपनी जूती के नीचे दबाए रखना चाहते हैं। अक्सर कहा जाता है कि वह साफ नहीं रहते। इसका उत्तर साफ है- वे गरीब हैं। गरीबी का इलाज करो। ऊँचे-ऊँचे कुलों के गरीब लोग भी कोई कम गन्दे नहीं रहते। गन्दे काम करने का बहाना भी नहीं चल सकता, क्योंकि माताएँ बच्चों का मैला साफ करने से मेहतर तथा अछूत तो नहीं हो जातीं।

लेकिन यह काम उतने समय तक नहीं हो सकता जितने समय तक कि अछूत कौमें अपने आपको संगठित न कर लें। हम तो समझते हैं कि उनका स्वयं को अलग संगठनबद्ध करना तथा मुस्लिमों के बराबर गिनती में होने के कारण उनके बराबर अधिकारों की माँग करना बहुत आशाजनक संकेत हैं। या तो साम्प्रदायिक भेद को झंझट ही खत्म करो, नहीं तो उनके अलग अधिकार उन्हें दे दो। कौंसिलों और असेम्बलियों का कर्तव्य है कि वे स्कूल-कालेज, कुएँ तथा सड़क के उपयोग की पूरी स्वतन्त्रता उन्हें दिलाएं। जबानी तौर पर ही नहीं, वरन साथ ले जाकर उन्हें कुओं पर चढ़ाएं। उनके बच्चों को स्कूलों में प्रवेश दिलाएं। लेकिन जिस लेजिस्लेटिव में बालविवाह के विरुद्ध पेश किए बिल तथा मजहब के बहाने हाय-तौबा मचाई जाती है, वहाँ वे अछूतों को अपने साथ शामिल करने का साहस कैसे कर सकते हैं?

इसलिए हम मानते हैं कि उनके अपने जन-प्रतिनिधि हों। वे अपने लिए अधिक अधिकार माँगें। हम तो साफ कहते हैं कि उठो,अछूत कहलानेवाले असली जनसेवको तथा भाइयो! उठो! अपना इतिहास देखो। गुरु गोविन्दसिंह की फौज की असली शक्ति तुम्हीं थे! शिवाजी तुम्हारे भरोसे पर ही सब कुछ कर सके, जिस कारण उनका नाम आज भी जिन्दा है। तुम्हारी कुर्बानियां स्वर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं। तुम जो नित्यप्रति सेवा करके जनता के सुखों में बढ़ोतरी करके और जिन्दगी संभव बना कर यह बड़ा भारी अहसान कर रहे हो, उसे हम लोग नहीं समझते। लैण्ड-एलियेनेशन एक्ट के अनुसार तुम धन एकत्र कर भी जमीन नहीं खरीद सकते। तुम पर इतना जुल्म हो रहा है कि मिस मेयो मनुष्यों से भी कहती हैं- उठो, अपनी शक्ति पहचानो। संगठनबद्ध हो जाओ। असल में स्वयं कोशिश किए बिना कुछ भी न मिल सकेगा। (Those who would be free must themselves strike the blow.) स्वतन्त्रता के लिए स्वाधीनता चाहनेवालों को यत्न करना चाहिए। इन्सान की धीरे-धीरे कुछ ऐसी आदतें हो गई हैं कि वह अपने लिए तो अधिक अधिकार चाहता है, लेकिन जो उनके मातहत हैं उन्हें वह अपनी जूती के नीचे ही दबाए रखना चाहता है। कहावत है- 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते'। अर्थात् संगठनबद्ध हो अपने पैरों पर खड़े होकर पूरे समाज को चुनौती दे दो। तब देखना, कोई भी तुम्हें तुम्हारे अधिकार देने से इन्कार करने की जुर्रत न कर सकेगा। तुम दूसरों की खुराक मत बनो। दूसरों के मुँह की ओर न ताको। लेकिन ध्यान रहे, नौकरशाही के झाँसे में मत फँसना। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं करना चाहती, बल्कि तुम्हें अपना मोहरा बनाना चाहती है। यही पूँजीवादी नौकरशाही तुम्हारी गुलामी और गरीबी का असली कारण है। इसलिए तुम उसके साथ कभी न मिलना। उसकी चालों से बचना। तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुम असली सर्वहारा हो... संगठनबद्ध हो जाओ। तुम्हारी कुछ भी हानि न होगी। बस गुलामी की जंजीरें कट जाएंगी। उठो, और वर्तमान व्यवस्था के विरुद्ध बगावत खड़ी कर दो। धीरे-धीरे होनेवाले सुधारों से कुछ नहीं बन सकेगा। सामाजिक आन्दोलन से क्रांति पैदा कर दो तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रांति के लिए कमर कस लो। तुम ही तो देश का मुख्य आधार हो, वास्तविक शक्ति हो। सोए हुए शेरो! उठो और बगावत खड़ी कर दो।

# ऐसे उजड़े कि फिर न बस सके

**अनुपमा**

"

***सृजन के लिए संहार की उपयोगिता स्वीकारने वाले कहते हैं कि युद्ध की दुंदुभि दरअसल शांति का उद्घोष ही है... लेकिन इस शाब्दिक दर्शन से परे जिसने भी युद्ध की विभीषिका को खुली आंखों से देखा, वही जानता है कि युद्ध कैसी शांति का उद्घोष करता है! युद्ध के बाद की शांति क्या होती है, अगर यह जानना हो तो कभी प्रथम विश्वयुद्ध में अपना सर्वस्व खो चुके फ्रांस के इस कस्बे में जाकर देखिए...***

पेरिस से करीब 170 मील दूर, म्यूस नदी के किनारे बसा यह कस्बा कभी जीवन के कलरव से गूंजता था, लेकिन कहते हैं कि आज यहां भूतों का बसेरा है। पर... यह भूत और कौन हो सकता है सिवाय अतीत के! जो भी हो, फिलहाल इस कस्बे को पर्यटन की चीज बना दिया गया है, ताकि आने वाले यहां के भूत और वर्तमान को तोलते हुए मर्माहत भले न हों, पर युद्ध के विचार पर एक बार पुनर्विचार अवश्य कर सकें। फ्रांस के इस कस्बे का नाम है—वेर्डन। इसके दक्षिण पूर्व करीब चार मील पर डायमोंट नाम का एक खुशहाल गांव हुआ करता था। जहां कुल 50 घर थे, आज से 98 बरस पहले एक चिंगारी में वे सारे घर गुम हो गए। अब यहां घरों की बजाय घास के चौकोर टुकड़े हैं, जिन पर उन लोगों के नाम और व्यवसाय लिखकर तख्तियां लगा दी गई हैं, जो कभी यहां आबाद थे।

वेर्डन की ज़मीन पर फ्रांस और जर्मनी की सेनाओं ने जो आठ महीने लंबी लड़ाई लड़ी, उसने यूरोप के इतिहास को बदलकर रख दिया था। इतिहासकार एपीजे टेलर का कहना है कि 'युद्ध करने वालों ने ऐसा कोई इलाका दांव पर नहीं लगाया था, जो जीत या हार के लिहाज़ से अहम हो सकता था। फ्रांस ने दांव पर लगाई इस छोटे-से कस्बे वेर्डन और उसके आस-पास बसे गांवों की जिंदगी, जिसमें पांच लाख से अधिक लोग हताहत हुए।'

आठ महीने, नौ गांव और 3 लाख सैनिकों समेत कुल 5 लाख लोग... इतिहासकारों का कहना है कि दोनों देशों की सेनाओं में एक भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा था। सब-कुछ जैसे पलक झपकते ख़त्म और ख़ाली हो गया। ज़िंदगी के रंगों से सजी इस धरती पर अगर कुछ बचा रहा, तो वह था मौत का सन्नाटा, जिसे शांति कह पाना 98 बरस बाद भी नामुमकिन लगता है।

इतिहासकार एम. ली. नायर ने लिखा है कि 'हिरोशिमा की शुरुआत वेर्डन से होती है।' युद्ध के आरंभिक चार महीनों में वेर्डन में करीब 3 करोड़ 20 लाख बम गिराए गए। यह सख्या इस कस्बे के क्षेत्रफल के लिहाज़ से इतनी अधिक थी कि हर एक सेंटीमीटर ज़मीन के हिस्से में तकरीबन 10 बम आए थे। गोलाबारी से छलनी हुआ वेर्डन रक्तसंहार, पीड़ा और दुष्कर नायकत्व का प्रतीक बन गया। यह मिट्टी जिसमें मानवता के रक्त की कराहें अभी तक जस की तस सिसक रही हैं, वहां फिर कोई घर न बस सका, न कोई वहां रहने की हिम्मत ही कर पाया। हां, विजेता देश ने पत्थर का एक स्मृतिगृह वहां ज़रूर बनवा दिया, ताकि सैनिकों की अस्थियां और अन्य अवशेष सहेजकर रखे जा सकें।

म्यूस का एक किनारा सैनिकों के रक्त को साफ किए बिना जस का तस छोड़ दिया गया, ताकि आगामी पीढ़ियां दर्द, विनाश, विजय और पराजय के इस संगम को कभी न भूलें। वेर्डन के मैदान में जो फर उगा दिए गए थे, वे अब लंबे और सघन हो गए हैं, लेकिन अगर जड़ों के बीच के खाली स्थान को गौर से देखा जाए, तो भूरे निशान दिखाई दे जाते हैं। कई जगहों पर खाइयों की टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियां भी दिखाई दे जाती हैं। चलने वाले इस बात का केवल एहसास भर कर पाते हैं कि जिस धरती पर वे चल रहे हैं, उसमें हजारों-हजार सैनिकों का रक्त बिछा है।

वेर्डन के आसपास के नौ गांव हालांकि नाम के रूप में अब

भी जिंदा हैं, लेकिन वे ऐसे उजड़े कि फिर आबाद नहीं हो पाए। ये गांव इस बात का प्रतीक हैं कि जब दो शक्तियां अपने-अपने सही होने के अंधे दावे के साथ टकराती हैं, तो शस्त्रों की जमात समेत कितने भयावह ढंग से मानवता का प्राणांत हो जाता है। डायमोंट की मेयर मेरी क्लाउडे कहती हैं, 'हमने इस गांव की स्मृतियों को ज़िंदा रखा है, क्योंकि युद्ध की आंधी आने से 1000 साल पहले तक यह गांव खुशहाल और आबाद था। हमने उन स्मृतियों को संजोया है, जो यहां के लोगों से जुड़ी थीं, उनके नाम, व्यवसाय, खुशियां और संघर्ष... हर साल इस गांव के निवासियों के संबंधी उन्हें याद करने के लिए यहां एकत्र होते हैं, हमें केवल एक ही सवाल घेरता है कि क्या आने वाली पीढ़ी भी उनकी यादों से इतना ही जुड़ाव महसूस कर सकेगी? उसे कहां यह परवाह है कि वेर्डन क्या था और उसके साथ क्या हुआ?' आज संपूर्ण विश्व प्रथम विश्वयुद्ध की स्मृतियों से गुजर रहा है, फ्रांस में भी कई कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं, लेकिन इन श्रृंखलाओं में कहीं उस युद्ध का नाम नहीं है, जो वेर्डन के सीने पर लड़ा गया, लेकिन सवाल यह भी है कि युद्ध की याद किस आधार पर की जाए? क्या इस आधार पर कि इसने आधुनिक दुनिया को एक नए सांचे में ढाला? या इस आधार पर कि युद्ध की चर्चाओं में से मिथक और इतिहास को छांटते हुए हम अपने लिए एक युद्धरहित शांतिमय दुनिया तलाश लेंगे? *साभार : अहा! ज़िंदगी*

# मैंने उसे मार गिराया

**—थॉमस हार्डी—**

(अनु. जंग बहादुर गोयल)

गर हम किसी सराय में मिले होते
तो गले लग कर जार-जार रोते
अपने रुमाल आंसुओं से भिगो डालते।
पर युद्ध के मैदान में
आमने-सामने खड़े होकर
उसने मुझ पर वार किया
मैंने उस पर वार किया
और मैंने उसे मार गिराया।
मैने उसे मार गिराया
क्योंकि वह मेरा दुश्मन था
हां! वह मेरा दुश्मन ही था
इसमें तो कोई संदेह नहीं
वह भी सेना में बस यूं ही भर्ती हुआ था
जैसे मैं हुआ था, मैं बेकार था, बेजार था
वह भी जरूर मेरी ही तरह
बेकार और बेजार ही होगा।
हां! कितनी अजीब है ये लड़ाई
मैंने मार गिराया उस शख्स को
जो गर किसी मदिरालय में मिला होता
तो हम दोनों हमप्याला होते
और तंगदस्ती के दौर में
इक दूजे की इमदाद भी करते।

# शांति

**सरिता चौहान**

**“**

हमें थोड़ी सी चोट पहुचती है तो हमें दर्द होता है, हम केवल थोड़ी-सी तकलीफ का ही अनुभव करते हैं लेकिन हड़कम्प मचा देते हैं। ज़रा उनकी कल्पना कीजिए जो बुरी तरह से घायल हैं, उन बच्चों की कल्पना कीजिए जो अनाथ हैं। कल्पना कीजिए उन विधवा और बुजुर्ग और लाचार माता-पिता की जिन्होंने अपने उन बच्चों को खो दिया है जो कि उनका एकमात्र सहारा थे यह तकलीफ, यह खूनखराबा, यह हिंसा क्यों? क्या कोई भी कारण ज़िंदगी से बढ़कर हो सकता है? क्या युद्ध या हिंसा तकलीफों का अंत कर सकते हैं? क्या यह अपने पीछे ज़्यादा प्रतिरोध और नफ़रत हीं छोड़ जाते हैं?

पूरे संसार में धर्म के नाम पर बहुत अधिक असहिष्णुता और मानवीय हिंसा होती रही है। 'जिहाद', 'धर्म युद्ध' या 'होली वॉर' के नाम पर यह अंधा धार्मिक उन्माद, मानव जाति पर असंख्य कष्ट थोपने और जुल्म ढाने के लिए ज़िम्मेदार है। इसे भगवान या आध्यात्म से नहीं जोड़ा जा सकता है। 'जिहाद' का अरबी में मतलब है परम संघर्ष करना और यह संघर्ष स्वयं से होना चाहिए। यदि कोई युद्ध लड़ा जाना है तो वह अपने भीतर की बुराइयों से लड़ा जाना है।

श्री गुरू ग्रंथ साहिब कहती है :

**जब तक मनुष्य के लिए एक दुश्मन है और एक दोस्त,**
**तब तक उसका मन शांत नहीं हो सकता है।**
—गुरू ग्रंथ साहिब, पृष्ठ 278

धम्मपद कहती है :

**विजय नफ़रत का बीज बोती है क्योंकि पराजित कष्ट में रहते हैं।**
**शांतिप्रिय प्रसन्न रहते हैं, विजय और पराजय की ओर नहीं देखते।**
—धम्मपद 201

सभी धर्मों के माध्यम से हमने राम, बुद्ध, यीशु, मोहम्मद, नानक को शांति के मसीहा के बतौर देखा है। उन्होंने लोगों को वह मार्ग दिखाया जो शांति की ओर जाता है। सभी धर्मों में शांति की खोज सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। शांति परम सत्य से साक्षात्मकार के बाद मिलती है। वह जीवन में गंभीरता और स्पष्टता लाती है और बड़ी संभावनाओं के दरवाजे खोलती है। आध्यात्मिक विकास होने के बाद ही चिंताओं, इच्छाओं और मस्तिष्क के भटकाव से छुटकारा मिलता है। सभी धर्मों में मस्तिष्क द्वारा उस स्तर को हासिल करने की सराहना की गई है जिस स्तर पर आस्था के माध्यम से आत्मा को शांति और चैन मिलता है।

कुरान में यह उल्लेखित है कि इस्लाम शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द सलाम से हुई हुई है जिसका मतलब है शांति और उसी स्रोत से उत्पत्ति हुई है एकता और अमन के धर्म की।

स्वयं में शांत रहते हुए ही दूसरों को शांति दी जा सकती है और मनमुटावों को दूर किया जा सकता है। शांति और सामंजस्य की संस्कृति को बढ़ावा देना हम सब की जिम्मेदारी है। अपने धार्मिक गंथों की थाती से लैस सभी धार्मिक संस्थान शांति की दिशा में अपने प्रयासों के माध्यम से इन ग्रंथों को सम्मान प्रदान कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य को शांतिपूर्ण ढंग से करना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति मस्तिष्क की शांति, शांति और कोई झगड़ा नहीं, शांति और कोई शक नहीं, शांति और कोई भय नहीं, स्वयं में शांति और बाहर भी शांति—पारिवारिक संबंधों में, समाज में, संसार में और पूरे ब्रह्मांड में शांति चाहता है।

स्वयं प्रकृति भी शांत स्वभाव की है। प्रकृति सामंजस्य और परस्पर निर्भरता के आधारपर टिकी है। सेहत और व्यवस्था उसी तरह से एक व्यक्ति पर लागू होती है जिस तरह से उसके आस-पास के ब्रह्मांड पर। यह बहुत ज़रूरी है कि प्रकृति द्वारा बनाई गई व्यवस्था में हस्तक्षेप न किया जाए ताकि वह सर्वशक्तिमान द्वारा तय किए गए चक्र के अनुसार चलती रहे।

उसकी रचना को देखो जिसमें धरती पर मौजूद समस्त जीवन शामिल हैं—रंग और रूप में इतने भिन्न, प्रत्येक को उसने कितने परिश्रम से बनाया है और फिर उनको इस तरीके से संजोया कि सब कुछ सही जगह पर सही दिखता है। उसने मनुष्यों को खास शक्तियों से नवाजा है ताकि हम उस सब की देखभाल कर सकें जिसे उसने प्रेमपूर्वक बनाया है। इसलिए हमारा फर्ज बनता है कि हम उसके रचना संसार की देखभाल पूरे प्यार व शिद्दत के साथ करें और किसी भी जीव-जंतु को नुकसान न पहुंचाएं क्योंकि सभी में वह बसता है।

हम सब ने अलग-अलग रूप पाया, विभिन्न भाषाएं पायीं, विभिन्न जीवन शैलियां पायीं, विभिन्न संस्कृतियां पायीं, विभिन्न रीति-रिवाज पाए लेकिन हम सबने मानवता का अंश एक सा ही पाया। हम सब में एक ही अनजान सत्ता का वास है, हम सब में एक ही ऊर्जा होती है, हम सब में एक ही ईश्वर, एक ही सत्य और एक ही आत्मा होतीहै। उसमें हमारा विश्वास, फिर चाहे किसी भी नाम या धर्म के तहत हो, हमें आस्था के एक ही सूत्र में पिरोता है। यह एक ही ईश्वर में आस्था, मानवता में आस्था और हमारी अपनी अंतरात्मा में आस्था है। इसलिए ज़रूरी है कि हम आपस में घृणा या वैमनस्य का व्यवहार न करें और संसार में शांति व समरसता बने रहने दें।

**ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः**
**पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।**
**वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्म शान्तिः**
**सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥**
**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**
—*(यजुर्वेद 36.17)*—

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः,**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुख भागभवेत्।**
**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**
—*(वृहदारण्यक उपनिषद)*—

पुण्यतिथि विशेष :

# काजी नज़रूल इस्लाम :

## हिंदू हैं या मुसलमान, यह सवाल कौन पूछता है

कृष्ण प्रताप सिंह

***असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि में रची कविता में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ विद्रोह के आह्वान के बाद नज़रूल इस्लाम 'विद्रोही कवि' कहलाए। उपनिवेशवाद, धार्मिक कट्टरता और फासीवाद के विरोध की अगुआई करने वाली उनकी रचनाओं से ही इंडो-इस्लामिक पुनर्जागरण का आगाज़ हुआ माना जाता है।***

*हिंदू ना ओरा मुस्लिम, ओइ जिग्गाशे कोन जोन, कंडारी बोलो दुबिछे मानुष। अर्थात् हिंदू हैं या मुसलमान, यह सवाल कौन पूछता है? उसे बताओ मेरे कप्तान! मानवता डूब रही है।*

बताने की जरूरत नहीं कि हिंदू-मुस्लिम सौहार्द के अनूठे पैरोकार और बांग्ला के महानतम कवियों में से एक काजी नज़रूल इस्लाम द्वारा 1926 में अपनी 'कंडारी हुनसियार (खबरदार मेरे कप्तान)' शीर्षक कविता में किया गया यह सवाल-जवाब यह आज भी उतना ही मौजूं है, जितना तब था, जब उन्होंने कांग्रेस के एक अधिवेशन में इसे पहली बार गाया, क्योंकि 'हिंदू-मुसलमान' करने वाले आज भी कम नहीं हुए हैं।

पश्चिम बंगाल के तत्कालीन वर्धमान जिले में आसनसोल के पास स्थित चुरुलिया नामक गांव के एक मुस्लिम परिवार में (जो देश के अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के वक्त कभी हाजीपुर से आकर वहां बसा था और एक तालुकेदार घराने से वास्ता होने के बावजूद जिसकी माली हालत बहुत खस्ता थी। फिर भी उसके पुरखों में कभी किसी के काजी होने के कारण उसके सभी पुरुष सदस्य अपने नाम के आगे काजी लगाया करते थे।)

25 मई, 1899 को पैदा हुए बेगम जाहिदा खातून व काजी फकीर अहमद के बेटे नज़रूल तकलीफें सहते-सहते इतने बुझे-बुझे व खोए-खोए रहने लगे थे कि लोग उन्हें दुक्खू मियां कहकर बुलाते थे। लेकिन समय के साथ सारी विघ्न-बाधाओं को धता बताते हुए उन्होंने अपने व्यक्तित्व का ऐसा बहुमुखी उन्नयन किया कि जल्दी ही हिंदू-मुस्लिम भाईचारे के अग्रदूत, हिंदू व इस्लामी दर्शनों के समन्वयक, विद्रोह व क्रांति के कवि, संगीतकार, नाटककार, उपन्यासकार, पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी आदि विविध रूपों में पहचाने जाने लगे।

1921 में उस वक्त के मशहूर प्रकाशक अली अकबर खान की भतीजी से तय उनकी शादी ऐन निकाह के दिन उनके घर जमाई बनने के लिए राजी न होने के कारण टूट गई तो उन्होंने ब्रह्म समाज की प्रमिला देवी से अंतरधार्मिक शादी का फैसला किया। इससे खफा धार्मिक कट्टरपंथियों ने पहले उनकी शादी में तमाम अड़ंगे लगाए, फिर मौलवियों के खानदान से होने के बावजूद नज़रूल के प्रमिला को अपनी शरीक-ए-हयात बनाने से पहले कलमा न पढ़ाने व मुसलमान न बनाने को लेकर उन पर कुपित हो उठे। लेकिन नज़रूल ने उन्हें कतई कान नहीं दिया, उल्टे बुरी तरह झिड़क दिया। फिर प्रमिला हिंदू बनी रहीं और नज़रूल कट्टरपंथियों की आंखों की किरकिरी। इसके बावजूद दोनों ने बेटों के नाम भी गंगा-जमुनी ही रखे—कृष्णा मोहम्मद, अरिंदम चावला, काजी सव्यसाची और काजी अनिरुद्ध। दुखदायी यह कि इनमें से प्रथम दो को उन्होंने उनके बचपन में ही खो दिया।

नज़रूल समझते थे कि कट्टरपंथियों को एक दिन समझ आ जाएगी और वे उनसे अलानाहक दुश्मनी रखना छोड़ देंगे। लेकिन उन्होंने अपने भक्ति गीतों और कविताओं में इस्लामी व हिंदू दर्शन की मान्यताओं का समन्वय आरंभ किया तो वे एक बार फिर कट्टरपंथियों के कोपभाजन बन गए। उनके कृष्णभक्ति में डूबे भजन और श्यामा संगीत भी उन्हें नहीं ही सुहाए। इसे लेकर उन पर हिंदू धर्म के तथाकथित संरक्षक भी कोप गए और इस्लामी कट्टरपंथ के पैरोकार भी। इन दोनों ने उन पर शब्दों के बाण तो भरपूर चलाए ही, शारीरिक हमले भी कराए। लेकिन नज़रूल को विचलित नहीं होना था ओर वे नहीं हुए। इस सिलसिले में काबिलेगौर है कि नज़रूल के

समकालीन रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने समय को लेकर कहा है कि 'फिलहाल, देश में कालरात्रि उतरी हुई है।' यह कालरात्रि नज़रूल के हिस्से भी कुछ कम नहीं आई। लेकिन वे जल्दी ही उसके अंधेरे को चीरते हुए आगे बढ़ चले। फिर तो उनकी रचनाएं ब्रिटिश साम्राज्य से छुटकारा पाने के संघर्ष में कुछ भी उठा न रखने वाले स्वतंत्रता सेनानियों के साथ हर हाल में स्वतंत्रता पाने को मचलती आम जनता की भी प्रेरणा बन गईं।

1920 से 1940 के बीच जब वे अपनी लोकप्रियता के चरम पर थे, सोवियत संघ की 1917 की बोल्शेविक क्रांति से प्रेरित होकर उन्होंने 'सर्वोहारा' (सर्वहारा), 'सम्योवादी' (साम्यवादी), दरिद्रो (गरीबी) और 'आनंदमोइर अगोमोन' (आनंदमोई का स्वागत) जैसी कविताएं रचीं। 'आनंदमोइर' अगोमोन में उन्होंने भारत को गुलाम बनाने वाले ब्रिटिश साम्राज्य को कसाई तक बता डाला था। जैसे ही यह कविता उनकी 'धूमकेतु' नामक बांग्ला पत्रिका में छपी, गोरे सत्ताधीशों ने बौखलाकर उसके कार्यालय पर छापा मारकर उन्हें पकड़ लिया और माफी मांगने को कहा। उनके इससे साफ इनकार कर देने पर उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर उन्हें साल भर के कठोर कारावास की सजा सुना दी गई। लेकिन नज़रूल जेल की यातनाओं से भी नहीं टूटे तो देश के प्रति उनके समर्पण के मुरीद रवींद्रनाथ टैगोर ने अपना 'बसंता' नामक नाटक उन्हें समर्पित कर दिया। फिर तो कृतज्ञ नज़रूल ने भी उनके प्रति कविताएं लिखीं। समय के साथ जहां टैगोर को भारत व बांग्लादेश दोनों के राष्ट्रगान लिखने का गौरव हासिल हुआ, वहीं नज़रूल भारत के 1960 के पद्मभूषण, 1977 के इंडिपेंडेंस डे अवार्ड विजेता और बांग्लादेश के राष्ट्रकवि बने।

नज़रूल ने कुल मिलाकर तीन हजार गीतों की रचना की है, जिनसे निर्मित शैली को 'नजरुलगीति' नाम से जाना जाता है। नज़रूल का मानना था कि चूंकि दुनिया की सारी कलाएं आम जनता की और उसके लिए हैं, इसलिए सारे कलाकारों को, वे कवि हों, कथाकार या संगीतकार, जनता के प्रति समर्पित होना चाहिए।

उनके प्रारंभिक जीवन पर जाएं तो उनकी प्राथमिक शिक्षा एक मदरसे में हुई थी। बाद में व्यवधानों के बीच उन्होंने अरबी व फारसी की शिक्षा ग्रहण की और 1917 में पढ़ाई छोड़कर वे ब्रिटिश सेना में हवलदार बने तो उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के नौशेरा क्षेत्र और कराची में अपनी सेवाएं दीं। कराची में ही 1919 में साओगाट (द गिफ्ट) नामक पत्रिका में प्रकाशित एक छोटी कहानी के जरिये उनका बंगाली साहित्यिक परिदृश्य में प्रवेश हुआ।

पहला विश्वयुद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजों ने वह रेजीमेंट भंग कर दी, जिसमें वे हवलदार थे, तो वे कलकत्ता लौट आए और कॉलेज स्ट्रीट पर 'मुस्लिम भारत' नामक पत्र के कार्यालय के पास भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के संस्थापकों में से एक मुजफ्फर अहमद के साथ रहने लगे। बाद में दोनों ने मिलकर लेबर स्वराज पार्टी स्थापित की, उसका पैम्फलेट लिखा और उसके मुखपत्र लैंगोल का संपादन भी किया। उन्हीं दिनों उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'बंधन हारा' भी लिखा, जो 'मुस्लिम भारत' में धारावाहिक रूप से छपा।

1919 में पंजाब के जलियांवाला बाग में अकल्पनीय नरसंहार के विरुद्ध देशव्यापी राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हुआ और रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी 'सर' की उपाधि वापस कर दी, तो नज़रूल भी इस सबके महज साक्षी नहीं बने रह सके। स्वतंत्रता संघर्ष में कूद पड़े और अपनी सारी रचनाएं उसे समर्पित कर दीं।

उन्हीं दिनों देशबंधु चितरंजनदास के पत्र 'बांग्लार कथा' में छपे उनके एक क्रांतिकारी गीत ने क्रांतिकारियों में नया जोश भर दिया था। उसका एक अनूदित अंश यों है :

*जेल के इस लोहे के द्वार को तोड़ दो*
*उसके टुकड़े-टुकड़े कर दो*
*पत्थरों को रक्तरंजित कर दो*
*स्वतंत्रता की देवी की पूजा के लिए उठो।*

इसी तरह 'अग्निवीणा' नाम से उनका पहला कविता संग्रह प्रकाशित हुआ, तो उसकी 'विद्रोही' शीर्षक कविता ने पूरे बंगाली समाज में क्रांति की भावनाएं भर दीं :

मैं भूकंप हूंए मैं तूफान हूं
मेरे रास्ते में जो भी आएगा
उसे मैं नष्ट कर दूंगा
मैं वही करूंगा
जो मेरी इच्छा होगी
मैं किसी कानून अथवा
नियम का पालन नहीं करूंगा।
मैं प्रलय हूं, मैं आग हूं। (अनुवादित)

असहयोग आंदोलन की पृष्ठभूमि में रची गई इस कविता में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के खिलाफ विद्रोह के उनके आह्वान के बाद उन्हें 'विद्रोही कवि' कहा जाने लगा। ब्रिटिश सेना में हवलदार रहने के कारण बहुत से लोग उन्हें 'हवलदार कवि' भी कहते हैं। उपनिवेशवाद, धार्मिक कट्टरवाद, अभिजात्यवाद और फासीवाद के विरोध की अगुआई करने वाली उनकी रचनाओं से ही इंडो-इस्लामिक पुनर्जागरण का आगाज हुआ भी माना जाता है।

फिर भी बांग्ला संसार में उनके प्रति ईर्ष्यालु एक ऐसा वर्ग लगातार मौजूद रहा है, जिसे उनकी मनमौजी प्रतिभा का अनादर करने में किसी भी सीमा तक जाने से परहेज नहीं। इस वर्ग के कई आलोचक उनके साहित्य को अहंकारी और लोकलुभावन तक करार देते और अर्धसाक्षरों को ध्यान में रखकर लिखा गया, उन्हीं पर केंद्रित यानी कमतर और सौंदर्यशास्त्र से रहित मानते हैं।

तिस पर विडंबना यह कि नज़रूल को न लंबा जीवन नसीब हुआ, न ही साहित्य-सृजन की लंबी पारी। उनकी रचनात्मक पारी महज दो दशकों तक चलीं। छुटपन में ही पिता को खो देने के बाद कठिन जीवन संघर्ष के क्रम में वे एक मस्जिद में उनकी जगह मुअज्जिन, फिर ब्रिटिश सेना में हवलदार बनने से पहले घरेलू सहायकों जैसे छोटे-मोटे काम करने और एक घुमक्कड़ लोक संगीत मंडली का हिस्सा बनने को मजबूर हुए। फिर जिंदगी जैसे-तैसे पटरी पर आई तो 42 साल की उम्र में ही दिमाग की 'पिक' नामक भीषण बीमारी ने उन्हें मानसिक व शारीरिक दोनो स्तरों पर तोड़ डाला।

अलबत्ता, 1971 में बांग्लादेश का जन्म हुआ तो उसने उन्हें अपना राष्ट्रकवि बनाया। इसके अगले ही बरस 1972 में उसने भारत सरकार की सहमति लेकर बुलावा भेजा तो वे सपरिवार उसकी राजधानी ढाका चले गए, जहां चार साल बाद 1976 में 29 अगस्त को उनका निधन हो गया। *साभार : thewirehindi.com*

# अम्न का राग

**—शमशेर बहादुर सिंह—**

सच्चाइयाँ
ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं
मैंने एशिया की सतरंगी किरणों को
अपनी दिशाओं के गिर्द लपेट लिया
और मैं यूरोप और अमरीका की
नर्म आँच की धूप-छाँव पर
बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ
सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख-शांति का राग हूँ
बहुत आदिम, बहुत अभिनव।

हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे
सुलग उठे हैं
सब एक साथ ढाई अरब धड़कनों में बज उठे हैं
सिम्फ़ोनिक आनंद की तरह
यह हमारी गाती हुई एकता
संसार के पंच परमेश्वर का मुकुट पहन
अमरता के सिंहासन पर
आज हमारा अखिल
लोक-प्रेसिडेंट बन उठी है।
देखो न हक़ीक़त हमारे समय की कि जिसमें
होमर एक हिंदी कवि सरदार जाफ़री को
इशारे से अपने क़रीब बुला रहा है कि जिसमें
फ़ैयाज़ ख़ाँ बिटाफ़ेन के कान में कुछ कह रहा है

मैंने समझा कि संगीत की कोई अमर लता हिल उठी
मैं शेक्सपियर का ऊँचा माथा उज्जैन की घाटियों में
झलकता हुआ देख रहा हूँ
और कालिदास को वैमर के कुंजों में विहार करते
और आज तो मेरा टैगोर मेरा हाफ़िज़
मेरा तुलसी मेरा ग़ालिब
एक-एक मेरे दिल के जगमग पावर हाउस का
कुशल आपरेटर है।
.........
हर घर में सुख शांति का युग
हर छोटा-बड़ा हर नया-पुराना आज-कल-परसों के
आगे और पीछे का युग
शांति की स्निग्ध कला में डूबा हुआ
क्योंकि इसी कला का नाम
जीवन की भरी-पूरी गति है।
.........
आज मैंने गोर्की को होरी के आँगन में देखा
और ताज के साए में राजर्षि कुंग को पाया
लिंकन के हाथ में हाथ दिए हुए
और तालस्ताय मेरे देहाती यूपियन होंठों से बोल उठा
और अरागों की आँखों में नया इतिहास
मेरे दिल की कहानी की सुर्ख़ी बन गया
मैं जोश की वह मस्ती हूँ जो नेरुदा की भवों से
जाम की तरह टकराती है
वह मेरा नेरुदा जो दुनिया के शांति पोस्ट आफ़िस का
प्यारा और सच्चा क़ासिद
वह मेरा जोश कि दुनिया का मस्त आशिक़
मैं पंत के कुमार छायावादी सावन-भादों की चोट हूँ
हिलोर लेते वर्ष पर
मैं निराला के राम का एक आँसू
जो तीसरे महायुद्ध के कठिन लौह पर्दों को
एटमी सुई-सा पार कर गया पाताल तक
और वहीं उसको रोक दिया
मैं सिर्फ़ एक महान विजय का इंदीवर जनता की आँख में
जो शांति की पवित्रतम आत्मा है।
.........
हम मनाते हैं कि हमारे नेता इनको देख रहे हों।

(अंश)

*साभार : vagartha*

# व्हाइल वी वॉच्ड

## लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में खड़े एक निहत्थे पत्रकार की वेदना

**फ़ैयाज़ अहमद वजीह**

"

***'ह्वाइल वी वॉच्ड' डॉक्यूमेंट्री घने होते अंधेरों की कथा सुनाती है कि कैसे इसके तिलस्म में देश का लोकतांत्रिक ढांचा ढहता जा रहा है और मीडिया ने तमाम बुनियादी मुद्दों और ज़रूरी सवालों की पत्रकारिता से मुंह फेर लिया है।***

**रेमन** मैग्सेसे पुरस्कार विजेता और देश के जाने-माने पत्रकार रवीश कुमार पर केंद्रित डॉक्यूमेंट्री 'ह्वाइल वी वॉच्ड' को देखने की पहली तयशुदा और शायद आख़िरी वजह भी मेरे लिए रवीश ही थे, चाहें तो कह सकते हैं कि मुरीद होने की हद तक मैं उनकी पत्रकारिता और किसी हद तक लेखनी ('इश्क़ में शहर होना', 'बोलना ही है') का भी प्रशंसक रहा हूं, अब भी हूं। हालांकि, जब इस फिल्म से आंखों का रिश्ता कायम हुआ तो एहसास हुआ कि हम अपने समय में सियासी तौर पर थोपी गई यातनाओं से गुजर रहे हैं, एक अजीब सी यातना, शायद जानी-पहचानी सी, मगर किसी अदृश्य नजरबंदी की अजिय्यत में मुब्तला, जिस पर रवीश कई बार मुस्कुरा रहे हैं, कहकहे लगा रहे हैं, 'सारे जहां से अच्छा' गा रहे हैं, और कई बार बस चुप हैं,और कई जगहों पर उनकी आंखों के खालीपन में गोया बहुत सारे गुमशुदा और लगातार गुम होते दृश्यों की चुभन को छुपा लेने की कोई थकी हुई ख़्वाहिश अपनी ही उंगली के स्पर्श और ओट में हमारे भीतर भीग जाती है, वहीं उनके गिर्द कुछ जलती हुई और बहती हुई आंखें भी हैं, जिनकी ताब लाए नहीं बनती कि

ताब लाए ही बनेगी 'ग़ालिब'
वाक़िया सख़्त है और जान अज़ीज़

कई मानों में इस बेहद डिस्टर्बिंग डॉक्यूमेंट्री को देखते हुए एक तरह के ब्लैक-आउट से भर गया हूं, और बक़ौल शायर कि, 'आवाज़ मिरी लौट के आती है मुझी तक/ये शहर मिरा काश बयाबां नहीं होता' की कैफ़ियत से दोचार अपने बेकल मन की खिड़की से बाहर किसी शून्य को निहार रहा हूं।

आख़िर इस डॉक्यूमेंट्री में ऐसा क्या है कि एक ख़ौफ़ का साया भी रेंगता हुआ सा महसूस होता है? असल में ये जो कुछ भी है सबसे पहले एक पत्रकार की मनोदशा को गिरफ़्त में लेने की हुनरमंद कोशिश है, चाहें तो इसे अलग से साहसिक भी कह सकते हैं, जहां न्यूज़-रूम में उसके सहकर्मियों-सहयोगियों के बीच की दुनिया और निजी जीवन में भी सत्ताधारियों के उगले विष और शासकीय द्वेष का अवसाद फैला हुआ है, वहीं मुख्यधारा के मीडिया के रसातल में जाने या रवीश के ही शब्दों में कहें तो 'गोदी मीडिया' और सरकारी भोंपू बन जाने की खीज हमारी आंखों में भी उतर आई है।

ये कहानी रात और उसके अंधेरे से शुरू होती है, एक ऐसी रात से जो आम दिनों की तरह किसी शाम के ढलने पर नहीं आती, बल्कि राष्ट्रवाद के झूठे और नकली नारों, टेलीविजन स्क्रीन से चिपकी प्रोपगैंडा मशीनरी के तमाशों और सियासी नफरत के बेहंगम शोर-शराबे के गर्भ से पैदा होती है। ये डॉक्यूमेंट्री हमें उसी रात और उसके घने होते अंधेरों की कथा सुनाती है कि कैसे इसके तिलस्म में देश का लोकतांत्रिक ढांचा ढहता जा रहा है और तमाम बुनियादी मुद्दों और ज़रूरी सवालों की पत्रकारिता से मीडिया ने मुंह फेर लिया है।

यूं भी कह सकते हैं कि इस डॉक्यूमेंट्री में हमें एक

तरफ 'जीरो टीआरपी' वाले उस 'बेबस' और शायद 'थके' हुए एंकर की पत्रकारिता की जद्दोजहद बल्कि कशमकश नजर आती है जिसे 'हम लोग', 'रवीश की रिपोर्ट', 'देस की बात','प्राइम टाइम' और प्राइम टाइम भी क्या जहां हमने तमाम जरूरी मुद्दों के साथ विश्वविद्यालयों की बदहाली के किस्सों से लेकर नौकरी सीरीज तक में उत्कृष्ट पत्रकारिता के नमूने देखे हैं, वहीं दूसरी तरफ पत्रकारिता और इस पत्रकारिता के ख़िलाफ़ देश में पक्षकारिता की अंधी होड़ को भी इसमें बड़े सलीके से चित्रित और संदर्भित किया गया है।

सत्ता और कॉरपोरेट की सांठगांठ या उनके इस प्रायोजित खेल में रवीश के नजरिये से 'ह्वाइल वी वॉच्ड' को अपने ही भीतर चलते हुए और हर दिन निहत्थे कर दिए जाने की कवायद में किसी किरदार के नित्य पिसते रहने की यंत्रणा कहिए या रेत की तरह ढहती दीवारों से टिकी हुई पत्रकारिता की छत को थाम लेने की कोई कोशिश, ये डॉक्यूमेंट्री हमें झिंझोड़ देती है।

लगातार ट्रोल्स के निशाने पर रहना, धमकियों को सुनना और टीआरपी के पायदान पर बैठे गला-फाड़ चैनलों के बीच हर दिन 'नमस्कार, मैं रवीश कुमार' से आगे लिखने की तैयारी करने की यातना को इस डॉक्यूमेंट्री में देखना दरअसल उसी अंधकार में आख़िरी सांसें गिन रही 'रोशनी' में घुल जाने जैसे किसी बेहद पीड़ादायक अनुभव से गुज़रना भी है।

ये डॉक्यूमेंट्री उन दिनों की कहानी कहती है जब रवीश ने अभी एनडीटीवी से इस्तीफा नहीं दिया था और हर तरह से सरकार की आंखों की किरकिरी बने हुए थे। अब भी बने हुए हैं, लेकिन शायद हुक्मरानों को इस बात की तसल्ली हो कि हमने कम से कम इसका 'घोंसला' तो उजाड़ ही दिया। हालांकि, बिजली गिरने के बाद भी जले हुए तिनके की बू बाकी रहती है, और जैसा कि रवीश ने कहा था कि थक जाने तक उनके सामने एक खुला आसमान मौजूद है।

बहरहाल, मैंने शुरू में अधिनायकवादी सियासत और तंत्र की तरफ से थोपी गई जिन यातनाओं की ओर इशारा करने की कोशिश की है, उनमें गालियों और मौत की धमकियों से इतर संस्थान के साथ-साथ रवीश व्यक्तिगत तौर पर भारत के कई शहरों में एनडीटीवी के स्क्रीन को फ्रीज किए जाने की तकलीफ से त्रस्त हैं और उसी वक्त अपनी बिटिया के साथ हंसते-खेलते और गाते हुए जिस तरह इसमें नजर आते हैं या अपनी इस नन्ही-सी जान को साइकिल दिलाने के क्रम में अचानक पत्रकारिता के समक्ष इसी राजनीति द्वारा पैदा की जाने वाली एक और चुनौती की वजह से इस मासूम सी ख़्वाहिश को आने वाले कल के वादे पर उठा रखते हैं, तो महसूस होता है कि शायद इस लोकशाही व्यवस्था में बाप-बेटी के हंसने-खेलने के लम्हे भी क़ैद कर लिए गए हैं और अब इसमें बच्चों के खेल-खिलौनों की गुंजाइश तक नहीं बची।

खैर, ये डॉक्यूमेंट्री हमें बताती है कि पत्रकारिता किसी प्रायोजित मत से सम्मत का रिश्ता जोड़ना नहीं, बल्कि जब आपको सुनने वाला कोई न हो तब भी सच बोलना और सच दिखाना ही है।

ऐसे में रवीश जब कई बार शहर में लटके मीडिया के बड़े-बड़े आउटलेट/होर्डिंग-बैनर की चकाचौंध को निहारते हैं या अपने ख़िलाफ़ कहीं कोई बैनर-पोस्टर लटका हुआ पाते हैं तो सहसा ही लगता है कि पत्रकारिता की गुमशुदगी का कोई अदृश्य फरमान उनके चेहरे की शिकन पर उग आया है और किसी दिशासूचक की तरह ये हमें बहुत कुछ बता रहा है, शायद ये कि नदी सूख रही है और मरुस्थल आगे है।

मुझे कोई अंदाज़ा नहीं है कि फिल्मकार विनय शुक्ला ने इस डॉक्यूमेंट्री को किस जतन और मशक्कत से तैयार किया है, लेकिन ये जरूर कह सकता हूं कि उन्होंने हर जरूरी संदर्भ, मानी-ख़ेज़ इशारे और भाव को कैमरे की भाषा में बड़ी खूबी से उतार दिया है। मैं इसके तकनीकी पक्ष पर ज़्यादा बात नहीं कर सकता, मगर एक दर्शक के तौर पर कहना चाहिए कि किसी आंसू गैस के गोले की तरह ये फिल्म आंखों में जल रही है और सांसों में खराश अब तक बाकी है।

अंत में बस ये कि शायद कई लोगों को ये डॉक्यूमेंट्री रवीश के हौसले और साहस की रुदाद लगे। हां, यहां एक तरह के डर को महसूस करते हुए मुझे भी ये ऐसी ही दास्तान लगती है, लेकिन ये उससे कहीं आगे हमारे समय के भयावह सच पर नंगे पांव बैठकर अपने धैर्य को टटोलने और अपने ही भीतर निरंतर चलने की एक जरूरी सरगुज़श्त है।

और वो जो खुद रवीश ने कहा है न कि 'हर जंग जीतने के लिए नहीं लड़ी जाती, कुछ सिर्फ इसलिए लड़ी जाती हैं कि दुनिया को बताया जा सके कि कोई था जो जंग के मैदान में खड़ा था।' और शायद 'ह्वाइल वी वॉच्ड' उसी रणभूमि में लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्ष में खड़े एक निहत्थे पत्रकार की वेदना है।

# विश्व शांति दिवस पर आईएसडी द्वारा आयोजित
# शांति मार्च की कुछ झलकियां

इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी (आईएसडी) सामाजिक, सांस्कृतिक विविधताओं को स्वीकारते हुए परस्पर सम्मान के साथ संवाद कायम कर शांति-सद्भाव और लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है और इस दिशा में निरंतर प्रयासरत रहता है। ऐसे ही एक प्रयास के तहत 21 सितंबर, विश्व शांति दिवस के मौके पर आईएसडी द्वारा अपने विभिन्न कार्यक्षेत्रों में शांति मार्च करते हुए जनसंपर्क अभियान चलाया गया और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया। पेश हैं उसकी कुछ झलकियां :

isd
सतत् विकास के लिए शांतिमय और
समावेशी समाज का निर्माण
Local Capacities for Peace
शांति सद्भाव और लोकतंत्र के लिए साझी विरासत
21 सितम्बर विश्व शान्ति दिवस पर शान्ति मार्च
रामेश्वर शिशु विहार से कोतवाली चौराहा से होते हुए
अम्बेडकर तिराहा, गांधी प्रतिमा खरका कालोनी, जौनपुर सम्पन्न होगा।
आयोजक - इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

सतत विकास के लिए शांतिमय और
समावेशी समाज का निर्माण
आओ मिलकर करें विचार
दुनिया में शांति का प्रचार
ISD A.S.K
आओ मिलकर दीप जलाएं
भारत का संविधान बचाएं
ISD A.S.K

isd
शांति सद्भाव और लोकतंत्र के लिए साझी विरासत
18th National Jamboree Rajasthan

**इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी**

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067,

भारत, टेलीफोन : 091-011-26177904, टेलीफैक्स : 091-011-26177904

ई-मेल : prakashan.isd@gmail.com, notowar.isd@gmail.com / वेबसाइट : www.isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए